सिद्धयोग

संस्थापक : योगीयोगेश्वर अनन्तश्री परमसोऽहमजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-282002 (आगरा) उ.प्र.

प्रकाशन तिथि : 01.07.2018 मूल्य : एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 360/-

वर्ष : 51 : अंक : 4 जुलाई 2018

मन के कहने में न चलना

मन के कहने में नहीं चलना चाहिए। जब क यह मन वश में नहीं हो जाता तब तक इसे अपना परम शत्रु मानना चाहिए। जैसे शत्रु के प्रत्येक कार्य पर निगरानी रखनी पड़ती है वैसे ही इसके भी प्रत्येक कार्य को सावधानी से देखना चाहिए। जहाँ कहीं यह उल्टा–सीधा करने लगे, वहीं इसे धिक्कारना और पछाड़ना चाहिए। मन की खातिर भूलकर भी नहीं करनी चाहिए। यद्यपि यह बड़ा बलवान् है, कई बार इससे हारना होगा; पर साहस नहीं छोड़ना चाहिए। जो हिम्मत नहीं हारता वह एक दिन मन को अवश्य जीत लेता है। इससे लड़ने में एक विचित्रता है। यदि दृढ़ता से लड़ा जाए तो लड़ने वाले का बल दिनोंदिन बढ़ता है और इसका क्रमशः घटने लगता है, इसलिए इससे लड़ने वाला एक–न–एक दिन इस पर अवश्य ही विजयी होता है। अतएव इसकी हाँ–में–हाँ न मिलाकर प्रत्येक कार्य में खूब सावधानी से बर्तना चाहिए। यह मन बड़ा ही चतुर है। कभी डरावेगा, कभी फुसलावेगा, कभी लालच देगा, बड़े–बड़े अनोखे रंग दिखलायेगा; परन्तु कभी इसके धोखे में न आना चाहिए। भूलकर भी इसका विश्वास न करना चाहिए। इस प्रकार करने में इसकी हिम्मत टूट जायगी, लड़ने और धोखा देने की आदत छूट जायगी। अन्त में यह आज्ञा देने वाला न रहकर सीधा–सादा आज्ञा–पालन करने वाला विश्वासी सेवक बन जायेगा।

मन लोभी, मन लालची, मन चंचल, मन चोर।
मन के मत चलिये नहीं, पलक पलक मन और।।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 51
अंक 4

जुलाई
2018

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विपदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

यो ब्राह्मणं विद्धाति पूर्व
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमं आत्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुवै शरणमहं प्रपद्ये।।

अर्थात्

जो परमेश्वर निश्चय ही सबसे पहले ब्रह्मा उत्पन्न करता है और जो निश्चय ही उस ब्रह्मा को समस्त वेदों का ज्ञान प्रदान करता है, उस परमात्मज्ञान विषयक बुद्धि को प्रकट करने वाले प्रसिद्ध देव परमेश्वर को मैं मोक्ष की इच्छा वाला साधक शरण रूप में ग्रहण करता हूँ। वे ही मुझे इस संसार बंधन से छुड़ाएँ।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

□□□ □□□

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1.	**विशेष लेख** – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	**सम्पादकीय**	9
3.	**श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा**– डॉ. विजय सिंह	12
4.	परमात्म–सत्ता की व्यापकता– सुश्री प्रेमवती एम.ए.	15
5.	अथ योगानुशासनम् अथवा योग की प्राचीनता – श्री सुरेन्द्र बहादुर	22
6.	योग साधन क्यों और कैसे ?– श्री चन्द्रहास शर्मा	29
7.	योग सिद्धाश्रम मंडी में विशाल योग शिविर– हेमराज मंडी	36
8.	पूर्ण योग– डॉ. जे.पी. शर्मा	39

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन	: रु.1000.00

संस्कार एवं कर्म भुगतान के तीन स्तर

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

देखो! आज के व्याख्यान में, मैं तुम्हें समझाऊँगा कि किस प्रकार से ध्यानाभ्यास करने पर साधक अपने कर्म संस्कार को हल्के में ही भोग कर मुक्त हो जाया करता है। अविद्या ही अच्छे बुरे सब कर्मों की जननी है। योग दर्शन में भगवान पतञ्जलि देव ने एक सूत्र में कहा है—

अविद्या क्षेत्रमुतरेषां प्रसुप्ततनु विच्छिन्नोदाराणाम् अर्थात् अविद्या प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार अवस्था वाले कर्मों की क्षेत्र भूमि है। मैंने तुम्हें अपने पिछले व्याख्यानों में संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध कर्मों का स्वरूप समझाया था। इनमें से **प्रारब्ध कर्मणाम भोगादेव क्षयः** अर्थात् प्रारब्ध कर्मों का क्षय भोग से ही होता है। मनुष्य को अपने प्रारब्ध को भोगना पड़ता है। परन्तु यदि कर्म संस्कार भोगने से ही खत्म होंगे तो पुरुषार्थ क्यों किया जाये? यह बात ठीक है किन्तु मनुष्य इस कर्म भोग को अपनी योग्यता एवं मानस स्तर के आधार पर अलग–अलग प्रकार से भोग करता है। हमारे कर्म दो प्रकार के क्रम में होते हैं एक होता है **सोपक्रम कर्म** तथा दूसरा होता है **निरुपक्रम कर्म**। सोपक्रम कर्म उस प्रकार से होते हैं जैसे सूखी लकड़ी शीघ्र जल कर समाप्त हो जाती है उसी प्रकार से इस श्रेणी के कर्म जल्दी जल्दी फलोन्मुख होते हैं और शीघ्र भुगतान में आ जाया करते हैं। निरुपक्रम कर्म उसी प्रकार से भुगतान में आया करते हैं जिस प्रकार से गीली लकड़ी धीरे–धीरे जल कर बहुत देर में समाप्त होती है। योगदर्शन में एक सूत्र आया है—**'सोपक्रम निरूपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा'** अर्थात् सोपक्रम और निरुपक्रम दो प्रकार के कर्म होते हैं उन दोनों में संयम करने पर मृत्यु का ज्ञान होता है अथवा अरिष्टों से भी मृत्यु का ज्ञान होता है। **'अवश्यमेव भोक्तव्यम कृतं कर्म शुभाशुभम्'** अर्थात् किये गये अच्छे बुरे सभी कर्मों का फल मनुष्य को भोगना ही पड़ता है। मनुष्य अपने कर्म संस्कार को तीन प्रकार से

भोगा करता है। स्थूल शरीर से, सूक्ष्म शरीर से तथा कारण शरीर से।

जो व्यक्ति तमोगुणी तथा बहिर्मुखी वृत्ति वाले हैं उन्हें कर्मों का भुगतान स्थूल शरीर में ही करना होता है। यह कर्म की उदारावस्था कहलाती है। स्वाध्यायशील ध्यान योगी तथा गुरु भक्त साधक सूक्ष्म शरीर में अपने कर्मों को भोगा करते है। स्वप्न में भी कर्मों का भुगतान हो जाया करता है। जब स्वप्न में अपनी या दूसरे की मौत दिखाई देता है ज्योतिषी लोग इसका फलादेश बताते हैं कि आपत्ति टल गई अर्थात् क्लिष्ट संस्कार का भुगतान सूक्ष्म में ही हो गया। अब इस का फल शुभ होगा। यह भी एक प्रकार से कर्म संस्कार के तन्वीकरण की ही अवस्था है। सत्व, रज और तम हमारे अन्तःकरण में रहा करते हैं और यह अन्योऽन्याश्रित रहते हैं इनमें एक प्रमुख तथा अन्य दो गौण रहा करते हैं। इन तीन गुणों के आधार पर ही चित्त की पाँच अवस्थाओं का वर्णन व्यासदेव जी ने अपने योग भाष्य में किया है। इनमें पहली अवस्था है मूढ़ावस्था। इस अवस्था में तमोगुण प्रधान रहता है। इस अवस्था के प्राणी प्रमाद और आलस्य, निद्रा और मोह से घिरे रहते हैं। **'अप्रकाशो अप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च'** अर्थात् इस अवस्था में प्राणी में अप्रकाश, कर्मों में अप्रवृत्ति प्रमाद और मोह बढ़ा रहता है। दूसरी अवस्था है क्षिप्तावस्था की। इस अवस्था में चित में रजोगुण प्रधान रहता है। इस अवस्था के प्राणी इस भौतिक दुनियाँ को ही सब कुछ मानने वाले होते हैं। उनका सिद्धान्त रहता है **'यावत जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्'** अर्थात् जब तक मनुष्य रहे उसे सुखपूर्वक ही रहना चाहिए। ऋण करके भी घी खाना चाहिए। उन लोगों का परमार्थ में विश्वास नहीं होता **'असौमया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि'। 'ईश्वरोऽहं अहंभोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी'** अर्थात् मैंने अमुख शत्रु को मार दिया है औरों को भी मैं मार दूँगा। मैं ही समर्थ हूँ भोगों को भोगने वाला हूँ। मैं ही सिद्ध, बलवान तथा संसार में सुखी पुरुष हूँ। इस प्रकार से नाना प्रकार की भ्रान्तियों में पड़ा हुआ होता है। इससे आगे की अवस्था है **विक्षिप्तावस्था। क्षिप्ताद् विशिष्टम् विक्षिप्तम्** अर्थात् क्षिप्त से जो श्रेष्ठावस्था है उसे विक्षिप्तावस्था कहते हैं। इस अवस्था वाले प्राणी लोक परलोक दोनों में विश्वास रखने वाले होते हैं। धर्म–अधर्म को मानने वाले, तथा आस्तिक विचारों के होते हैं। इनमें सतोगुण का उदय हो चुका होता है। इस श्रेणी के लोग पाप–पुण्य दोनों ही करते हैं।

इनकी धारणा रहती है—राम नाम रटते रहो, जब लग घट में 'प्राण' अर्थात् जब तक घट में प्राण हैं राम राम रटते रहना चाहिए। इन लोगों का परमार्थ में विश्वास तो होता है किन्तु इन्हें ठीक–ठीक मार्ग न मिलने के कारण भटकते रहते हैं। इनकी साधना बन नहीं पाती। चौथी अवस्था आती है एकाग्रता की। इस अवस्था में सतोगुण पूर्णरूप से उदित हो जाता है। इन

लोगों की वृत्ति कभी बहिर्मुखी व कभी अन्तर्मुखी रहती है इस कारण से कर्मों का भुगतान थोड़ा स्थूल शरीर से तथा थोड़ा सूक्ष्म शरीर से होता है। इस सम्बन्ध में, मैं अपने बड़े गुरु भाई श्री गोपालानन्द जी का प्रसंग सुनाता हूँ। पूर्व जन्म में इन्होंने किसी आशंका से क्रोध में आकर अपनी पत्नी के हाथ काट दिये थे। इस दुःख में छटपटाती हुई उसने अपना शरीर छोड़ दिया। इसके फलस्वरूप इनका भी इस जन्म में बाजू कटना था किन्तु ऐसा न होकर सूक्ष्म में भुगतान हो गया। ऋषिकेश आश्रम में कुँये से पानी खींचते हुये एक लम्बी कील से इनकी बाजू बुरी तरह से छिल गयी और घाव हो गया। इस प्रकार से उनके संस्कार का थोड़ा स्थूल व थोड़ा सूक्ष्म में भुगतान हो गया। मैंने तुम्हें कई बार मंगामल के विषय में बताया है। मंगामल के कठोर संस्कार का भुगतान श्री प्रभु जी ने सूक्ष्म में कर दिया था। मंगामल कामी व्यक्ति था। श्री प्रभु जी के पास आने वाले व्यक्तियों को देखकर उसकी धारणा थी कि ये बंगाल आदि से वशीकरण, सम्मोहन आदि सीख आये हैं इसलिए यहाँ भीड़ रहती है। मैं भी इनसे मंत्र तंत्र सीख लूँगा। मेरे पास भी स्त्री पुरुषों की भीड़ लगी रहा करेगी। इसी विचार से वह एक माह लगातार श्री प्रभु जी के पास आता रहा। प्रभु जी ने उसे बात करने का मौका ही नहीं दिया। एक रोज प्रभु जी ने उससे पूछा–'तुम्हें क्या चाहिए? तुम रोज आते हो किन्तु कहते कुछ नहीं हो। उसने कहा– मुझे भी आप तन्त्र मन्त्र सिखा दें यही मैं चाहता हूँ। श्री प्रभु जी ने उसे कागज पर लिख दिया कि तू लाहौर की अमुक स्त्री पर आसक्त है। वह स्त्री तुम्हारे पास आयेगी। तुम से काफी धन व आभूषण लेकर लाहौर चली जायेगी। इसके पश्चात् कुछ दिन बाद तुम्हारे पास उसका पत्र आयेगा उस में लिखा होगा–तुम मेरे पास ३०० रु. लेकर आ जाओ। इसके बाद मैं सदा के लिए तुम्हारी हो जाऊँगी। तुम ३०० रु. लेकर लाहौर जाने को तैयार हो जाओगे परन्तु उस समय प्रभु तुम्हारी रक्षा करेंगे। यदि तुम रुपये लेकर चले गये तो वह स्त्री उसी रात सोते में तुम्हें छुरा घोंप कर मार देगी।' यह लिखकर प्रभु जी ने वह कागज मंगामल को दे दिया और कहा–यह मंत्र है, कभी इसे नहीं पढ़ना। जब हम कहेंगे तभी पढ़ना। मंगामल ने वह कागज अपने पास सुरक्षित रख लिया। कुछ दिन बाद श्री प्रभु जी के लिखे अनुसार ही लाहौर से उस स्त्री का पत्र आया कि तुम तीन सौ रुपये लेकर लाहौर चले आओ इसके बाद मैं तुम्हारी ही हो जाऊँगी। मंगामल उसके कहे अनुसार तीन सौ रुपये लेकर लाहौर जाने के लिए चल पड़ा। वह अमृतसर में स्टेशन पर इधर उधर घूम रहा था, इतने में श्री प्रभु जी मिल गये। श्री प्रभु जी ने कहा–मंगामल! तू कहाँ जा रहा है? प्रभु जी ने दो–तीन बार उससे पूछा परन्तु उसने कोई उत्तर नहीं दिया। अन्त में क्रुद्ध होकर मंगामल बोला–आप को बिल्कुल भी शिष्टाचार नहीं है? मंगामल, मंगामल कह कर पुकार रहे हो। आप को कम

से कम लाला जी, मंगामल जी आदि सम्बोधन करके पुकारना चाहिए। प्रभु जी बोले—"ठीक है भाई, हमसे गलती हो गई। हमने तुम्हें एक मंत्र लिख कर दिया था अब तुम उस मन्त्र को पढ़ लो। इससे तुम्हें लाभ होगा। श्री प्रभु जी के वचनों को मान कर मंगामल ने उस कागज को पढ़ा। उस कागज में जो भी लिखा था वह उसके जीवन में सत्य–सत्य घट चुकी थी। उसने फिर भी लाहौर जाने का विचार नहीं छोड़ा। श्री प्रभु जी से पुनः पूछने लगा—"क्या वह मुझे अपने हाथ से ही मारेगी यदि ऐसी बात है तो फिर भी मैं जाऊँगा। उसके हाथ से मर जाऊँगा तो भी अच्छा है।" यह कह कर वह जाने को तैयार हुआ। यकायक प्रभु जी उसके मन में प्रेरणा करते हैं। वह सोचने लगा—पूर्णसिद्ध योगिराज हैं इन्होंने सब बातें पहले ही लिख दी थीं मैं इन्हीं योगेश्वर के चरणों में बैठकर अपना जीवन क्यों न सुधार लूँ? ऐसा सोच कर उसने लाहौर जाने का विचार छोड़ दिया। श्री प्रभु जी के चरणों में गिर कर कहने लगा—"प्रभु जी! मुझ से बहुत गलती हो गई है। मैंने आप को अपशब्द कहे हैं। मैं आप से क्षमा माँगता हूँ। आप मुझे क्षमा कर दें।"

श्री प्रभु जी ने उसे क्षमा कर दिया और योग मार्ग की दीक्षा दे दी। प्रभु जी के शक्तिपात के फलस्वरूप मंगामल आठ–आठ घण्टे एक ही आसन में ध्यान में बैठा रहता था। ध्यान की काफी ऊँची स्थिति हो गई। एक बार ध्यान में उसने देखा कि वही लाहौर वाली स्त्री उसके पास आई तथा उसने उसे छुरा घोंप दिया। ध्यान से उठकर श्री प्रभु जी को अपना यह अनुभव सुनाया। श्री प्रभु जी ने कहा—"आज तेरा यह क्लिष्ट संस्कार समाप्त हो गया है। उस घटना के बाद मंगामल को उस स्त्री का बिल्कुल भी विचार नहीं आया। उसे उससे घृणा हो गई। इस प्रकार ध्यान में बैठे रहने के कारण ध्यान में ही सूक्ष्म शरीर में ही उस संस्कार का भुगतान हो गया।

कुछ कर्मों का भुगतान स्थूल शरीर में तो होता है किन्तु थोड़े में निबट जाता है। यह उन लोगों का होता है जो ध्यान योग तो करते ही हैं साथ साथ सांसारिक कर्मों में भी लगे रहते हैं। इसका एक दृष्टान्त देता हूँ। अमृतसर में लालचन्द नाम का व्यक्ति अखबार बेचने का काम किया करता था। वह श्री प्रभु जी का दीक्षित बच्चा था। श्री प्रभु जी प्रायः अपने बच्चों को आने वाले क्लिष्ट संस्कारों के बारे में संकेत कर दिया करते हैं। श्री प्रभु जी ने ध्यान में लालचन्द से कहा कि अमुक व्यक्ति तुमसे छः सौ रुपये ले लेगा और तुम्हें मारेगा किन्तु रक्षा हो जायेगी। लालचन्द के पास छः सौ रुपये कहाँ थे? वह सोचने लगा—'मेरे पास पैसे ही नहीं हैं तो कोई मुझे कैसे मारेगा?' दूसरे दिन शाम को वह रावी रोड़ पर टहलने के लिए गया। उसने वहाँ सड़क पर पड़े एक पर्स को देखा। उसने उसे उठा लिया और देखा तो उसमें रुपये

थे। वह पैसे गिन ही रहा था कि कोई बदमाश छुरा लेकर आ कूदा और कहने लगा—'हरामजादे! पैसे गिन रहा है' यह कहकर उसने पर्स ले लिया और छुरा घोंप कर उसे मरा समझ कर चला गया। लालचन्द दर्द से कराहने लगा—उसकी यह आवाज किसी राहगीर ने सुन ली। वह उसके पास पहुँचा और सब दृश्य देखा। अन्य लोगों की सहायता से शीघ्र ही लालचन्द को अस्पताल ले जाया गया। इस प्रकार उसकी प्राण रक्षा हो गई। लालचन्द ने पूर्व जन्म में उसके छः सौ रु. देने थे जिसका भुगतान उसे इस जन्म में करना पड़ा। यह होता है कर्म का कुछ स्थूल में तथा कुछ सूक्ष्म में भुगतान। कुछ कर्म संस्कार ऐसे होते हैं जो विच्छिन्न हो जाते हैं। मलावन जिला एटा में हमारा एक बच्चा जगमोहन था। ध्यान में अच्छी स्थिति थी। वह अपने इष्टदेव में लय हो जाया करता था। लयता होने पर योगी को अनुभव होता है—**शिवोऽहम्, गणपतिरहम्**। मैं ही शिव हूँ। मैं ही गणपति हूँ। जगमोहन की भी ऐसी स्थिति हो जाया करती थी। एक दिन ध्यान में श्री प्रभु जी ने बताया कि कल दिन में ग्यारह बजे तुम्हें सर्प काटेगा। जगमोहन ने ध्यान में ही उसकी निवृत्ति का उपाय पूछा। श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया यदि तुम ध्यान में बैठकर अपने इष्ट देव में लय रहो तो बच जाओगे। जगमोहन ने अपने भाई को अपने पास बिठा लिया और अपने बचाव के उपाय करके अपने कमरे में ध्यान में बैठ गया। वह भगवान विष्णु में लय हो गया। ठीक समय पर एक भयंकर काला सर्प कमरे के ही किसी कोने के छिद्र में से निकल आया। आकर वह सर्प जगमोहन के शरीर पर घूमने लगा। परन्तु जगमोहन को इसका कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ। वह अपने इष्टदेव में लय था। पाँच मिनट तक सर्प शरीर पर घूमता रहा। उसके बाद वह फिर उसी बिल में चला गया। उसका भाई यह सब देखता रहा। थोड़ी देर बाद जगमोहन ध्यान से उठा। अपने भाई से पूछने लगा कि क्या सर्प आया था उसके भाई ने बताया कि एक भयंकर काला सर्प आया था। उसके शरीर पर पाँच मिनट तक चक्कर लगा कर वापिस चला गया। जगमोहन ने ध्यान में श्री प्रभु जी से पूछा—''प्रभु जी! सर्प ने मुझे काटा क्यों नहीं? प्रभु जी बोले—तू होता तो काटता विष्णु को थोड़े ही काटना था। तू तो उन्हीं में लय था। अतः वह घूम कर चला गया। उसका घोर क्लिष्ट संस्कार विच्छिन्नावस्था को प्राप्त हो गया। साधक अपने आप को जितना अन्तर्मुखी बना लेता है उसके आत्मतेज के प्रभाव से कर्म संस्कार क्षीण होते चले जाते हैं। विशुद्ध प्रकाश में लय होने पर संस्कार कट जाया करते हैं। **'ते प्रतिप्रसवहेया सूक्ष्माः'** समाधि की उच्चावस्था में योगी कर्म संस्कारों को कारण शरीर में संस्कार मात्र से ही क्षण में काट लेते हैं। मैंने तुम्हें बताया था कि अविद्या ही सब दुःखों का कारण है। इसी से सब कर्म व संस्कार बनते हैं।

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्त तनु विच्छिन्नोदाराणाम्

अर्थात् अविद्या ही अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नामक चार अन्य क्लेशों की प्रसव भूमि है। इन पाँच क्लेशों की ही प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार अवस्थायें होती हैं। प्रसुप्तावस्था में संस्कार चित्त में दबे पड़े रहते हैं। कालान्तर में कभी भुगतान में आयेंगे। जैसे समाधि की अवस्था में क्लिष्ट वृत्तियाँ दबी पड़ी रहती हैं। व्युत्थान में ये फिर जाग्रत हो जाती हैं। तनु संस्कार वे होते है जिन्हें हम क्रियायोग की साधना–से ध्यान योग की साधना से हल्के कर देते हैं उनका हमारे शरीर पर व मन पर बहुत थोड़ा असर पड़ता है। मनुष्य जितना–जितना समाधि का अभ्यास बढ़ाता है उतना ही संस्कार तनु होते चले जाते हैं। किन्तु बीज रूप से चित्त में पड़े रहते हैं। समाधि की पराकाष्ठा पर चित्तवृत्ति के पूर्ण निरोध होने पर ये बीज भी नष्ट हो जाता हैं। विच्छिन्नावस्था में कर्म संस्कार कट जाया करते हैं। गुरु देव की कृपा तथा रोगी की साधना के बल से ऐसा संभव होता है। संस्कारों की चौथी अवस्था उदारावस्था होती है। इस अवस्था में कर्म संस्कार को स्थूल शरीर पर भोगना ही पड़ता है। जो बहिर्मुखी वृत्ति के लोग हैं उन्हें अपने संस्कार उदारावस्था में भोगने ही पड़ते हैं। इसलिए कर्म संस्कारों को काटने का एक मात्र उपाय ध्यान योग है। तुम सब अपने को इस पवित्र योग मार्ग की ओर लगाओ। यही कल्याण का मूल साधन है। बार–बार सभी को आशीर्वाद।

योग साधन आश्रम ऋषिकेश का वार्षिक उत्सव सम्पन्न

इस वर्ष योग साधन आश्रम का वार्षिक उत्सव 20, 21 तथा 22 जून को धूमधाम से मनाया गया। 20 तारीख को प्रभात फेरी के साथ ही उत्सव प्रारम्भ हुआ। उत्सव में हिमाचल, हरियाणा, पंजाब एवं उत्तराखण्ड के भक्त काफी संख्या में आये थे। व्याख्यान देने वाले विद्वानों में श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम से डॉ. दासलाल जी महाराज, डॉ. वीरेन्द्र स्वरूप जी, श्री हरीश चन्द्र मिश्रा, ओमप्रकाश शास्त्री आदि की सहभागिता रही।

इन विद्वानों ने जीवन में योग के महत्व को दर्शाया तथा इसे मुक्ति का एकमात्र साधन बताया है। 21 जून को सायं 5 बजे योगासनों का प्रदर्शन भी कराया गया। 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस धूमधाम से मनाया गया। सारे विश्व में योग की धूम मची है। यह उक्ति चरितार्थ होती दीख रही है ''योग का डंका बजाने वाले आ गये श्री प्रभु जी।''

22 जून को विशाल भण्डारे के साथ ही उत्सव का समापन हुआ। आश्रम के आचार्य व व्यवस्थापक श्री रामनरेश शुक्ला जी से प्रसाद लेकर सभी अपने गन्तव्य की ओर गुरु चरणों का स्मरण करते हुये चल पड़े।

सम्पादकीय–

गुरु पूर्णिमा का अमृत पर्व

–आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज

हमारे देश में गुरु पूर्णिमा व व्यास पूर्णिमा–व्यास पूजा का पावन पर्व अषाढ़ माह की पूर्णिमा को बड़े धूम धाम व उल्लास से मनाया जाता है। ईश्वर प्रदत्त अद्‌भुत ज्ञान राशि वितरण गुरु परम्परा से अनादि काल से चला आ रहा है।

परमात्म ज्ञान के उस अथाह भण्डार से गुरुदेव द्वारा ही यह दिव्य ज्ञान संचारित होकर मानव धरातल तक पहुँचता है। जिससे सामान्य व्यक्ति भी इस ज्ञान का ग्राहक बन जाता है, बशर्ते व्यक्ति इस विद्या का उचित अधिकारी हो। गुरु मुख से ही परमात्म ज्ञान का श्रवण करके साधक अपने परमार्थ पथ पर चला करता है। गुरु मुख से प्राप्त विद्या ही फलवती होती है। गोविन्द से भी गुरु की महिमा अधिक बताई गई है। कहा है कि–

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु आपनो गोविन्द दियो लखाय।।

गुरु कृपा से ही ईश्वर के दर्शन संभव होते हैं। इसलिए प्रथम पूजा गुरुदेव की ही पूजा की जाती है। तत्पश्चात् गोविन्द की। सभी महान सन्तों ने गुरु की महिमा गाई है। गुरु शब्द शब्दे (क्रयादिगण) तथा गृ निरारणे इन दो धातुओं का व्युत्पन्न होता है। **'गृहाति उपदिशदि धर्मतिमति–गुरुः'** जो योगधर्म का उपदेश करे वही गुरु है। **''यदा गीर्यत स्तूयते देव–गन्धर्वा विमिरिति गुरुः।''** अथवा देव गन्धर्वादि जिसकी स्तुति करते हैं वह गुरु है। जो गुरु वही पूर्ण है। गुरु वह है जो गरिमामय है। जिसमें गुरुत्वाकर्षण है जीवों को अपनी ओर खींच लेते हैं। जो सबसे बड़ा है सर्व समर्थ, व्यापक है, अनन्त है। पूर्णत्व गुरुत्व में ही है। उस पूर्ण सत्ता को ही शास्त्रों की भाषा में ब्रह्म कहते हैं। अर्थात् जो सर्वत्र व्याप्त है। **''सर्व समाप्नोषि ततोऽसि सर्व**–(गीता) जो सबको अपने में समेट लेता है। इसलिए वह सर्वरूप है। उसे सर्वगत भी कहा जाता है। सर्वगत होने से ब्रह्म पूर्ण है। उपनिषद् में मंत्र आता है। **''पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते।''** अर्थात् वह ब्रह्म पूर्ण है। यह जगत भी उससे व्याप्त होने के कारण पूर्ण कहा गया है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है। यहाँ पर पूर्ण शब्द ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिए ही व्यवहृत हुआ है। श्रुति में **'रसो वै सः'** कहकर ब्रह्म को रसरूप में माना है। रसों का मूल स्रोत चन्द्रमा है।

पूर्ण चन्द्रमा में अमृत बनता है। वह अमृत ही रसरूप ब्रह्म है। गुरु में भी अमृत्व है। शिष्य को अमृत अमर बना देने की सामर्थ्य गुरुदेव में ही होती है, अन्य किसी में नहीं। गुरु पूर्ण समर्थ होता है चेतना का महस्रोत होता है। भगवान का अवतरण समय–समय पर इस संसार में होता चला आ रहा है। जब वे मानवाकृति में आते हैं, तब वे अपने सदुपदेश से, अपने दिव्य संस्पर्श से, लोकोत्तर चरित्र से जीव के कल्याण के लिए कृत संकल्प रहते हैं। इस रूप में भगवान का ऐसा मिलन जीव का आध्यात्मिक एवं भौतिक उभय मिलन होता है। उस समय वे गुरु शिष्य के रूप में ही होते हैं। उस क्षण जीव उस परम गुरु अर्थात् अपने इष्ट को पाकर यह भूल जाता है कि वह जन्मने और मरने वाला जीव है। वह इष्ट के रूप में तदाकार हुआ सिद्ध समर्थ गुरु अपने शिष्य के आत्मोत्थान के लिए मानव शक्ति का संचार करके शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक मन के शोधन के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की क्रियायें कराते रहते हैं।

भगवान कृष्ण गीता में मन और बुद्धि को इष्ट के सगुण रूप में समाहित कर देने की बात कहते हैं। भगवान की कृपा से जीव के मन और बुद्धि को अपने में विलय करा लेते हैं। जिससे जीव जीवत्व को त्याग कर ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। उस परम भाग्यशाली जीव को भगवान जीव ब्रह्मैक्य का बोध करा देते हैं। यही भगवान के अवतरण का रहस्य एवं उद्देश्य है। भगवान के इसी गुरुत्व के आकर्षण के कारण ही वे जगद्‌गुरु कहलाते हैं। जीवों का इस प्रकार परम गुरु से मिलन सहसा संयोगवश नहीं होता है। जन्म जन्मान्तर की उस आत्मदेव से मिलने की चाह तद्‌भावना भक्ति होकर उस जन्म के दृढ़ संस्कार सम्बन्ध के स्थापित होने पर यह बात संभव हो जाती है। अन्यथा परात्पर शक्ति के पृथ्वी पर आविर्भाव होने पर भी उनके निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी अपने कर्मों की मलीनता से भगवान के निन्दक ही बनकर जीवन बिता देते हैं। हम में से बहुत से भाग्यवान पुरुषों ने उस परम देव का श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सद्‌गुरु रूप में दर्शन एवं पावन सानिध्य का परम लाभ प्राप्त किया है। उनके पावन चरण तल में बैठने पर जीव की समस्त कामनायें एवं वासनायें विलुप्त हो जाती थीं। परम शांति एवं आनन्द का साम्राज्य छा जाता था। प्राण स्वतः ही निश्चल हो जाता था। सभी उपस्थित शिष्य समुदाय का जिनके गुरुदेव ही एक मात्र परायण एवं जीवन के सूत्रधार हैं यह देखकर **'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव'** – यह वचन मानस पटल पर घूमने लगता था।

ऋषि कल्प गुरुदेव के देदीप्यमान मुखमण्डल को देखकर अध्यात्म की किरणें स्वतः शिष्यों के मानव तल को स्पर्श कर लिया करती थीं। गुकार अन्धकार का वाचक है और रुकार अन्धकार निवारक या प्रकाश देने वाला। जो अन्धकार अज्ञान को दूर कर शिष्य के हृदय में ज्ञान की ज्योति जला दे वही गुरु है–ऐसा गुरुगीता का वचन है। **''नास्ति त्वं गुरोः**

परम।'' गुरुदेव से आगे कोई तत्व नहीं यह भगवान सदाशिव का आदेश है। शिष्य का जीवन–मृत्यु समर्थ गुरुदेव के हाथ में होता है। आवश्यकता है शिष्य के गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण की जो काफी दुःसाध्य है। योग से जीवन और ब्रह्म का एकत्व होता है। गुरु भक्ति से गुरु शिष्य का एकत्व हो जाता है। जो शिष्य के जीवन का लक्ष्य रहा करता है। इसीलिए नित्य ही गुरु गीता के इस श्लोक का मनन करता हुआ कहता है–

नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरंजनम्।
नित्यबोधंचिदानन्दं गुरु ब्रह्म नमाम्यहम्।।

अर्थात् जो नित्य है, शुद्ध है, आभास रहित, आकार रहित, माया रहित, नित्य बोध स्वरूप, चेतन और आनन्द रूप ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार गुरु की सेवा से, चिन्तन से शिष्य गुरु की उपासना करता है वह भव बन्धन से मुक्त हो जाता है। इसलिए गुरुदेव को भवभय विनाशक कहा गया है। गुरुदेव स्वयं मंत्र स्वरूप होकर शिष्य के आध्यात्मिक शरीर में अनुप्रविष्ट तत्पश्चात् शिष्य को अपने नित्य चैतन्य स्वरूप का बोध कराते हैं। शास्त्रों का लेख है–

''गुरु पूजा विहिनानाम् न सिद्धिः स्यादकदाचन''। जो गुरुदेव की पूजा आराधना नहीं करते तथा गुरुदेव को संतुष्ट नहीं रखते उन्हें कभी सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। जो गुरुदेव के दिये मंत्र का जाप करता रहता है तथा गुरुपदिष्ट मार्ग से ध्यान करता है वही गुरुदेव का प्रिय भक्त होता है और उसे ही अन्तर्ज्ञान प्राप्त होता है।

अतः शिष्य को गुरु निष्ठ रहना चाहिए। फिर उसके लिए भूतल में कुछ भी अप्राप्त नहीं रह जाता। इस बार गुरु–पूर्णिमा 27 जुलाई को सम्पन्न होना है। गुरु परम्परा को मानने वाले लोग इस अमृत पर्व को अत्यन्त धूमधाम से मनावें ताकि उन्हें भक्ति–मुक्ति अर्थात् इस लोक के सुख–ऐश्वर्य तथा मुक्ति दोनों ही प्राप्त हों! 29 जुलाई से रुद्र महायज्ञ चलेगा जिसकी पूर्णाहुति 8 अगस्त को होगी।

गुरु पूर्णिमा

गुरु पूर्णिमा का पावन पर्व परम्परागत रूप से श्री सिद्धगुफा संवाई पर दिनांक 27 जुलाई 2018 दिन शुक्रवार को श्रद्धा–भक्ति के साथ मनाया जायेगा।

दिनांक 29 जुलाई 2018 से 8 अगस्त 2018 तक विशेष अनुष्ठान कार्यक्रम का आयोजन गत वर्षों की भांति किया जायेगा।

||ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः||

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण की हर लिला-कृत में योगैश्वर्य प्रकट हुआ है। राक्षसों का वध करने से लेकर संतों पर कृपा करने में दोनों को सद्गति ही मिलती है। यदुवंशियों के कुलपुरोहित थे गर्गाचार्य जी वसुदेव जी के प्रेरणा से एक दिन नन्दबाबा के पास आये। चरणों में प्रणाम कर, आतिथ्य-सत्कार करने के पश्चात् नन्दबाबा बोले-प्रभो! जो साधारणतः बात इन्द्रियों की पहुँच के परे है अथवा भूत भविष्य के गर्भ में है, वह भी ज्योतिष-शास्त्र से जान ली जाती है। आपने उसी ज्योतिष-शास्त्र की रचना की है आप ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं कृपया मेरे इन दोनों बालकों के नामकरणादि संस्कार आप ही कर दीजिए।

ज्योतिषामयनं साक्षाद् यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम्।
प्रणीतं भवता येन पुमान् वेद परावरम्।।5।।

अ. 8 स्क. 10 पूर्वार्ध

नन्दबाबा के प्रार्थना करने से गर्गाचार्य जी ने नामकरण-संस्कार कर दिया। यह रोहणी का पुत्र सबको आनन्द देने वाला एवं बल श्रेष्ठ का नाम बलराम होगा। यह साँवला प्रत्येक युग में जन्म ग्रहण करता है। इस जन्म में इसका नाम 'कृष्ण' होगा। नन्द जी, सर्वदृष्टि से यह बालक भगवान नारायण के समान है। कुछ ही दिनों बाद घुटनों के बल राम और श्याम गोकुल में खेलने लगे। अन्य पुराणों में ऐसा वर्णन है कि भगवान की नित्यसिद्धा चिदानन्दमयी गोपियों के अतिरिक्त बहुत सी ऐसी गोपियाँ थीं, जो महान् साधना के प्रभाव से कृष्ण दर्शन लालसा से गोपियों के रूप में जन्मी थीं। जिनमें कुछ पूर्व जन्मों की देवकन्यायें थीं, कुछ श्रुतियाँ थीं, कुछ तपस्वी ऋषि थे। उग्रतपा नाम के ऋषि सुनन्द नामक गोप की कन्या सुनन्दा हुये। एक सत्य तपा नाम के ऋषि थे वे सुभद्र नामक गोप की कन्या सुभद्रा हुये। इसी तरह हरिधामा नाम के ऋषि सारंग नामक गोप के घर रंगवेणी नाम से अवतीर्ण हुये।

जाबालि नामक ऋषि परम ब्रह्मज्ञानी एक विशाल वन में घूमते हुये एक तेजस्विनी युवती को कठोर तप करते देखा। जाबालि जी ने नम्रता से पूछा, उस तपसी ने बताया-

ब्रह्मविद्याहमतुला योगीन्द्रैर्या च मृग्यते।

साहं हरिपदाम्भोजकाम्यया सुचिरं तपः।।

मैं ब्रह्मविद्या हूँ, जिसे बड़े–बड़े योगी सदा ढूँढ़ा करते हैं। मैं श्री कृष्ण के चरण कमलों की प्राप्ति के लिए इस घोर वन में उन पुरुषोत्तम का ध्यान कर रही हूँ। जाबालि ने उनके चरणों पर गिरकर दीक्षा ली तथा भगवान के ध्यान में निमग्न हो कठोर तप किया। तब जाकर वे प्रचण्ड नामक गोप के घर 'चित्रगंधा' के रूप में प्रकट हुये। ये वही गोपियाँ थीं जिनका तन, मन, धन सब श्रीकृष्ण पर न्योछावर था। उठते–बैठते, चलते–फिरते, सोते–जागते उन्हें अन्तर में श्रीकृष्ण ही का भान बना रहता था। भागवत् भाव को अन्तर दृष्टि से निरखने वाले महात्मा सूरदास जी ने कितना सजीव बाल कृष्ण के चरित्र का गान किया है–

मैया री, मोहि माखन भावै,
जो मेवा पकवान कहति तू, मोहि नहीं रुचि आवै।।
ब्रज युवती इक पाछें ठाढ़ी, सुनत स्याम की बात,
मन–मन कहति कबहुँ अपने घर, देखौं माखन खात।
बैठें जाई मथनियाँ कें ढिग, मैं तब रहौं छिपानी,
सूरदास प्रभु अन्तरयामी, ग्वालिनि–मन की जानी।।

अब राम–श्याम घुटनों के बल गोकुल की गलियों में घसीटते हुये चलते मातायें यह सब देखकर स्नेह से भर जातीं। उनकी बाल लीलाएँ, थोड़े बड़े होने पर ब्रज वासियों एवं गोपियों के मन को चकित, हर्षित, रोमांचित, एवं प्रफुल्लित करने लगीं। कन्हैया और बलदाऊ दोनों ही बड़े चंचल और खिलाड़ी थे। अब अपने समवयस्क साथियों के साथ खेलने ब्रज में निकल जाते, ब्रज की भाग्यवती गोपियों को निहाल करते हुये तरह–तरह के खेल खेलते। शक्तिपात प्राप्त गोपियों को भगवान श्री कृष्ण की स्फुरणा सदैव बनी रहती है। महात्मा सूरदास की पदावलियों की छटा देखें–

फूली फिरति ग्वाल मन में री।
पूछति सखी परस्पर बातैं पायो पर्यौ कछु कहुँ तै री।।
पुलकित रोम–रोम, गद्‌गद् मुखबानी कहत न आवै।
ऐसौ कहा अहि सो सखि री, हमकौ क्यों न सुनावै।।
तन न्यारा, जिय एक हमारो, हम तुम एकै रूप।
सूरदास कहै ग्वालिन सखिन सौं, देख्यो रूप अनूप।।

दशम स्कन्ध के पूर्वार्ध के नवमें अध्याय में बाल कृष्ण का ऊखल से बाँधा जाने का वर्णन है। एक समय यशोदा मैया दधिमन्थन कर रही थी उसी समय भगवान श्री कृष्ण

स्तनपान के लिए माता के पास आये और दही की मथानी पकड़ लिये तथा उन्हें मथने से रोक दिया और गोद में चढ़कर स्तन पान करने लगे। उसी समय अंगीठी पर रखे दूध में उफान आता देख श्रीकृष्ण को अतृप्त ही छोड़कर दूध उतारने चली गयीं। श्रीकृष्ण को थोड़ा क्रोध आ गया। पास पड़े लोढ़े से दही का मटका फोड़ डाला और दूसरे कक्ष में रखे माखन को खाने लगे।

इधर माता यशोदा मथने के घर में आयीं तो मटका फूटा दूध, दही मक्खन फैला हुआ पाया। उधर भगवान कृष्ण दूसरे कक्ष में ऊखल पर खड़े छींके से माखन निकाल–निकाल बन्दरों को खिला रहे हैं। वे चौकन्ने होकर चारों ओर सतर्क निगाह से देख भी रहे हैं। माँ यशोदा हाथ में छड़ी लेकर पीछे से धीरे–धीरे उनके पास पहुँचती तभी श्रीकृष्ण ऊखल से कूद कर भागे। बड़े–बड़े योगी तप के द्वारा अपने मन को अत्यन्त सूक्ष्म और शुद्ध बनाकर भी जिनमें प्रवेश नहीं करा पाते, पाने पकड़ने की बात दूर रही, उन्हीं भगवान को पकड़ने के लिए यशोदा जी दौड़ी–

तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वर–
स्ततो ऽवरुह्यापससार भीतवत्।
गोप्यन्वधावन्न यमाप योगिनां
क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः।।9।।

अ. 9 स्क. 10 पूर्वार्ध

बालकृष्ण छकाते रहे, अन्त में माँ को थका हुआ जान सभीत उनके पकड़ में आ गये। वे भय से आँखें उपर उठा ली थीं। लल्ला की व्याकुलता देख माँ ने हाथ की छड़ी फेंक दी और इस विचार से कि कहीं भाग न जावे वे रस्सी से श्रीकृष्ण को ऊखल में ठीक वैसे ही बाँध देती हैं, जैसे कोई साधारण सा बालक। यहाँ भी भगवान ने चमत्कार किया रस्सीयाँ छोटी पड़ जाती, अन्त में माँ को अत्यन्त परेशान देख वे स्वयं ही बँध जाते हैं।

भगवान अनन्य प्रेमी भक्तों के लिए जितने सुलभ हैं, उतने देहाभिमानी, कर्मकाण्डी एवं तपस्वियों को तथा स्वरूपभूत ज्ञानियों के लिये भी नहीं हैं।

नायं सुखापो भगवान् देहिनाम गोपिकासुतः।
ज्ञानीनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह।।21।।

अ. 9 स्क. 10 पूर्वार्ध

परमात्म-सत्ता की व्यापकता

सुश्री प्रेमवती एम. ए. (दर्शन, हिन्दी)

आधुनिक विज्ञान के युग में प्रथम तो परमात्म सत्ता के अस्तित्व के विषय में ही सन्देह और अविश्वास उत्पन्न हो गया है और जो लोग ईश्वर सत्ता को स्वीकार करते हैं वे भी उसकी व्यापकता को हृदय से स्वीकार नहीं करते। कुछ धर्म मतों में तो ईश्वर की व्यापकता को स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार किया जाता है। केवल ईसाई और मुसलमान ही नहीं बल्कि अपने सनातन धर्म-को मानने वालों में भी कुछ सम्प्रदाय इस विचार के उत्पन्न हो गये हैं जो इस बात का जोरदार प्रचार कर रहे हैं कि ईश्वर सर्वव्यापी नहीं है बल्कि माया सर्वव्यापी है। अर्बुद पर्वत स्थित (वर्तमान माउन्ट आबू में) एक विचार-प्रणाली इस प्रकार के प्रबल प्रचार में संलग्न है जिसमें वैदिक धर्म की कई मान्यताओं को जड़ से अस्वीकृत करके अज्ञान घोषित कर दिया गया है। यह संस्था ईश्वरीय प्रदत्त ज्ञान को जिस रूप में प्रस्तुत करती है उसका स्वरूप स्वीकृत मान्यताओं के आमूल परिवर्तन करने पर निर्धारित हुआ है। ''ब्रह्माकुमारी प्रजापति ईश्वरीय विश्वविद्यालय'' नाम से इसकी अनेक शाखायें इस बात का प्रचार करती हैं कि भगवान शिव कहते हैं कि माया सर्वव्यापी है परमात्मा सर्वव्यापी नहीं है। तर्क का आधार लेकर कहा जाता है कि यदि किसी मनुष्य से यह कहा जाय कि तुम्हारा बाप गधे, कुत्ते कीचड़ सब में है तो वह तुरन्त ही कहने वाले की अक्ल ठिकाने लगा देगा पर कितने आश्चर्य और खेद की बात है कि उस परमात्मा की शान में हम कुछ भी कह डालते हैं। परमात्मा तो आकाश तत्व से ऊपर शान्ति धाम में बिन्दु स्वरूप से शिवनाम से अलग रहता है और सर्वज्ञ होते हुए भी सर्वव्यापी नहीं है।

अब यदि तर्क का ही सहारा लिया जाए तो यह बात कुछ बुद्धि संगत नहीं है कि सर्वज्ञ तत्व सर्वव्यापी न हो। सर्वव्यापकता के नष्ट होते ही सर्वज्ञता भी असम्भव है। जहाँ पहुँच नहीं होगी वहाँ की बात जानेंगे क्या? और तब तो परमात्मा सीमित हो जाएगा और सीमित होते ही उसकी सर्वशक्तिमत्ता भी कहाँ रह जायेगी? वह तो बस केवल शान्ति धाम में रहने लायक रह जायेगा पर बात यह है प्रस्तुत विषय तर्क का न होकर अभ्यान्तरिक एकाग्रता का है। ईशावास्यं इदं सर्वं यत्किञ्चित् जगत्यां जगत'' के अनुसार जगत में जो कुछ है वह सब परमेश्वर का आवास है। उपनिषद् का यह वाक्य ऋषि की उस अभ्यान्तरिक अनुभूति से उत्पन्न हुआ है जो

सुनने भर से नहीं समझी जा सकती और प्रचार मात्र से जिसकी मान्यता हृदयग्राही नहीं हो सकती। इस अनुभूति को स्वयं के हृदय की अनुभूति बनाने के लिए ईश्वर की व्यापकता को अनुभव कर लेने के लिए अभ्यान्तरिक एकाग्रता की उस सीमा की आवश्यकता है जिसको प्राप्त कर के अन्य कुछ प्राप्त करने को नहीं रह जाता।

यह ठीक है कि तर्क बुद्धि का अपना स्थान है पर वह ज्ञान एक सीमित ज्ञान है और तर्क की कसौटी से भी व्यक्ति या शास्त्र का पढ़ा–सुना मानना केवल एक अन्धविश्वास ही है। केवल मन की एकाग्रता ही एक ऐसी स्थिति है जिसमें शास्त्रों का वास्तविक अर्थ ऋतम्भरा प्रज्ञा में जगमगा उठता है। समस्त संसार ही उस मनुष्य के दृष्टिकोण से दिखाई देता है जो पहाड़ की सबसे ऊँची–चोटी पर खड़ा नीचे की सब चीजों को साफ–साफ देख रहा है।

प्रश्न किया जा सकता है कि जिनको इस सीमा की एकाग्रता नहीं प्राप्त हुई वे किस किस बात को मानें। इस सीमा की एकाग्रता उपलब्ध होने तक किस मान्यता को हृदय में स्थान दें। तो उत्तर है कि यह भी आस्था का विषय है तर्क का नहीं। कई बार ईश्वर को व्यापक मानने वाले भी चोरी करते पाए जाते हैं। छीना झपटी, अन्याय हिंसा, असत्य दूसरे का स्वत्व हरण सब इसी प्रकार की क्रियाएं हैं जो ईश्वर के व्यापक स्वरूप को हृदय वाली कर लेने के उपरान्त होनी ही नहीं चाहिए। पर हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि लोग मुख से ईश्वर को सर्वत्र व्यापक मानते हुये भी ऐसी क्रियायें करते हैं। तात्पर्य यह है कि कहने सुनने से कुछ होता नहीं है। मानना पड़ता है। रेखा–गणित के प्रथम पाठ में पढ़ाया जाता है कि बिन्दु की लम्बाई–चौड़ाई नहीं होती। रेखा की चौड़ाई नहीं होती। पर अध्यापक विद्यार्थियों को पढ़ाते समय बिन्दु की लम्बाई–चौड़ाई और रेखा की चौड़ाई अंकित करने से विरुद्धाचरण का दोषी हो जाता है। परन्तु यह विरुद्धाचरण ही उच्चतम गणित पढ़ने के लिए आवश्यक है। तभी विद्यार्थी इस स्वयंसिद्ध सिद्धान्त को हृदयंगम कर पाता है कि वास्तव में बिन्दु लम्बाई–चौड़ाई रहित और रेखा चौड़ाई रहित होती है। उच्चगणित पढ़ते समय इस सिद्धान्त को दृष्टिगत रखना पड़ता ही है, नहीं तो सब ही गलत हो जाएगा। ठीक इसी प्रकार लौकिक व्यवहार करते समय इस बात को दृष्टिगत रखना पड़ेगा कि ईश्वर सर्वव्यापक है तभी अनेक प्रकार के विकर्मों से बचना सम्भव हो सकेगा। यदि कभी विरुद्धाचरण भी हो तो भी लक्ष्य को अधिक स्पष्ट करने के लिए ही होना चाहिए जैसे कि रेखा गणित का शिक्षक श्याम पट पर बिन्दु की लम्बाई–चौड़ाई बना कर सिद्धान्त को अधिक स्पष्टता ही देने के उद्देश्य से तो विरुद्धाचरण करता है। वैसे मोटी सी बात समझने के लिए यह भी है कि ईश्वर के किसी भी एक गुण को सम्पूर्ण रूप से साक्षात्कार कर लेने के उपरान्त अन्य गुणों का अलग–अलग साक्षात्कार करने की आवश्यकता

नहीं पड़ेगी। उस परम पिता की सर्वज्ञता को ही यदि हृदय से स्वीकार कर के उसी में अपनी निष्ठा को दृढ़ करके मन की एकाग्रता से सर्वज्ञता का साक्षात्कार कर लिया तो यह बात पूछने की गुंजाइश ही नहीं रह जाएगी कि परमेश्वर सर्वव्यापक है या नहीं। फिर जो लोग यह कहते हैं कि परमात्मा सर्वज्ञ तो है पर सर्वव्यापी नहीं है, उन्होंने एकाग्रता के किस स्तर पर इस प्रकार की घोषणा की है यह विचारणीय हो जाता है।

'ब्रह्म खल्विदं सर्वं' अर्थात् 'जो कुछ भी यह (संसार) है वह निश्चय ही ब्रह्म है' इस बात को मन की एकाग्रता द्वारा ब्रह्मानुभूति प्राप्त करके समझने के लिए योग सूत्र कहता है कि यह अनुभूति तीन प्रकार से प्राप्त होती है।

भवप्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्।'

अर्थात् देवताओं (उन व्यक्तियों को जो देहाध्यास से ऊपर उठ चुके हैं) और प्रकृतिलयों को उन व्यक्तियों को जिन्होंने प्रकृति की सूक्ष्म तन्मात्राओं में संयम करते-करते शरीर परिवर्तन कर लिया है जन्म-सिद्ध ब्रह्मानुभूति हुआ करती है।

'श्रद्धा वीर्य्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्'

अर्थात् दूसरे लोगों को श्रद्धा से उत्साह से लक्ष्य के स्मरण बने रहने से एकाग्रता और विवेक बुद्धि द्वारा उपाय प्रत्यय से ब्रह्मानुभूति हो जाती है।

अनेक पुण्यों के फलस्वरूप आप्त पुरुषों के प्राप्त हो जाने पर उनकी अनायास कृपा से जो हृदय जगमगा उठा करता है उसमें ब्रह्मानुभूति हो जाती है-

उपर्युक्त तीनों साधनों में से किसी के उपस्थित होने पर जो अनुभूति होती है उसके प्रकाश में एकमात्र परमात्म-तत्त्व की सर्वत्र सत्ता का ही अस्तित्व मात्र रह जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने बड़े सुन्दर शब्दों में कहा है-

सिया राम-मय सब जग जानी। करहुं प्रणाम जोर जुग पाणी।।

अर्थात् जब तक ब्रह्मानुभूति न हो तब तक यह मानते हुए कि सब संसार सियाराम-मय ही है केवल नमस्कार करते चलो।

नमस्कार में बड़ा बल है-

मन्मना भव, मद्भक्तो, मद्याजी, मांनमस्कुरु।

मेरे जैसा मन वाला बन जा (इतना भी करते न बने तो) मेरा भक्त हो जा (यह भी न कर पावे तो) मेरे लिए कर्म करने वाला हो (और इतना भी तू न कर सके तो) मुझे नमस्कार कर।

नमस्कार करते-करते से तो बेड़ा पार हुआ जाता है। जगदात्मा प्रतीक्षा करते हैं। 'मामेव ऐष्यसि कौन्तय प्रति जाने प्रियोसिमे' तू मुझे प्यारा है तू मुझी को प्राप्त होगा। और परम पिता

को जान भी कौन सकता है? अखिल ब्रह्माण्ड में मनुष्य की सत्ता एक परमाणु जैसी भी नहीं है। उसकी सीमित बुद्धि ईश्वरीय विधान में इतना भी तो महत्त्व नहीं रखती जितना महासागर की एक क्षुद्र तरंग। तरंग का अस्तित्व भी महासागर से अलग किया नहीं जा सकता। ब्रह्मानुभूति से च्युत प्राणी परमात्मा को बुद्धि के द्वारा जान ही नहीं सकता। जब जानेगा तब उसी परमात्मा–सत्ता में अपने को स्थित करके जानेगा। और तब –

जानत वह जिसे देव जनाई,
जानत तुमहि तुमहि हो जाई।

वही जानेगा जिस पर परमात्मा अपने आपको प्रकाशित करना चाहेगा और परमात्मा को जानते ही वह स्वयं परमात्मा स्वरूप हो जायेगा। तब उसका दृष्टिकोण संसार के प्रति बिल्कुल बदल जायेगा। परमात्मा का सर्वव्यापकत्व उसकी रग–रग में भर जायेगा। वह उस सत्ता में स्थित होकर स्वयं अपने को सब में सबको अपने में देखेगा। श्री श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में ऐसे युक्त योगी के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहा है–

''सर्व भूतस्थमात्मानं, सर्व भूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा, सर्वत्र समदर्शिनः।।''

अर्थात् ऐसा योग युक्तात्मा मनुष्य सब को समान दृष्टि से देखता हुआ सब संसार में स्थित अपने आपको और अपनी आत्मा में संसार को स्थित देखता है। और फिर वह चिल्लाता नहीं फिरता कि परमात्मा सर्व व्यापक है या नहीं है। कारण, वह जानता है कि ऐसी बात किसी के कहने से हृदय में नहीं उतारी जा सकती। परन्तु उसके आचरण की मस्ती से ईश्वर की सर्व व्यापक सत्ता की पुष्टि हुआ ही करती है। वह जहाँ जब आवश्यक समझता है ईश्वरीय विभूति को उपस्थित कर देता है और इस प्रकार ईश्वर की सत्ता की व्यापकता आप ही स्पष्ट हो जाती है। ऐसी योगी–

सुनत न काहूं की कही, कहत न अपनी बात।
नारायण या रूप में, मगन रहत दिन रात।।

और यह मगनता जब आती है तब वह देखता है–

''मयि एव सर्व इदं प्रोतम्?''

तब अपने आपको सर्वत्र अनुभव करता हुआ स्वरूप स्थिति में केवल ''अस्मि–अस्मि'' का अनुभव करता हुआ वह अस्मितानुगत समाधि के अच्युत आनन्द में मगन हो जाता है। ''सर्वत्र मैं हूँ'' इस अनुभव की मादक स्थिति मगन करने के साथ ही इस प्रकार का आचरण उद्‌भूति करती रहती है जिससे ईश्वर के व्यापकत्व में ही तो योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शिन

हो जाता है। सर्वत्र घटपटादि के अन्दर स्वयं को अनुभव करता हुआ और सब में अपने को देखता हुआ वही एक परमात्मा के सर्व व्यापकत्व का निर्णय दे सकता है और तभी उसकी दृष्टि–

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा, कूटस्थो विजितेन्द्रिय।
युक्त इत्युच्यते योगी, समलोष्टाश्म कांचनः॥

–गीता

ज्ञान विज्ञान से तृप्त होकर लोहा सोने में बरबर हो जाती है। भक्त–शिरोमणि प्रह्लाद ने तो जलत खम्भे में परमात्म–शक्ति को प्रत्यक्ष स्वीकार करके उसे आलिंगन में बांध लिया था। उसी बात की मानो–पुष्टि के लिए नृसिंह रूप में प्रकट होकर परमात्म–सत्ता अविचारी के ऊपर कुपित हो उठी थी। प्रह्लाद ने सर्वत्र परमात्म–सत्ता की व्यापकता का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए अनेक कष्ट सह लिए थे और प्रत्युत्तर में वह व्यापक सत्ता उसकी सदैव सहायक ही होती रही थी।

लेकिन परमात्मा के ऊपर निछावर हो तो सही। सम्प्रदाय केवल मत चलाते हैं और प्रचार करते हैं। बुद्धि के बल पर कभी एक विचार तरंग उपस्थित करते हैं कभी दूसरी परन्तु उससे कुछ हाथ नहीं लगता। जो कुछ सन्तोष ऐसे लोगों को प्राप्त भी होता है वह केवल अपने मनोबल, विश्वास, और भगवान पर आस्था रखने से।

रही भावना जाकी जैसी,
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।

परन्तु भावना के आधार पर प्रभु मूरत देखना और बात है और प्रभु में अपने को खोकर फिर तत्वतः उसको जानकर और जानकर वही हो जाना बिल्कुल दूसरी बात है। तभी तो जगत आत्मा की वाणी गुंजार रही है।

मया ततमिदं सर्वं, जगदव्यक्त मूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि, न चाहं तेष्ववस्थितः॥

परन्तु उपर्युक्त वाणी का भी कई बार इस प्रकार का अर्थ लगा लिया जाता है जिससे अर्थ का अनर्थ हो जाता है। ''**न चाहंतेष्ववस्थितः**'' का प्रायः यह अर्थ लगा लिया जाता है कि भगवान कहते हैं कि ''यह सारा जगत मुझ अव्यक्त मूर्ति से उत्पन्न हुआ है सब वस्तुयें मुझी से उत्पन्न हुई हैं पर मैं उनमें नहीं हूँ।'' इस अनर्थ से परमात्मा की सर्व व्यापकता पर आक्षेप करने वाले यदि समझदारी से इस श्लोक का भावार्थ ग्रहण करने की चेष्टा करेंगे तो ''**न चाहं तेष्ववस्थितः**'' का अर्थ यही होगा कि परमात्म–सत्ता किसी एक वस्तु में सीमित

करके नहीं रखी जा सकती। जिस प्रकार आकाश सर्वत्र व्याप्त है किन्हीं वस्तुओं में सीमित होकर नहीं रहता इसी प्रकार परमात्म–सत्ता सर्वत्र व्याप्त है न कि ''**सर्व भूतों**'' में सीमित होकर बैठ गया है।

इसी भाव को प्रकट करते हुए विकर्म करने वालों को ललकारते हुए एक उर्दू शायर ने कहा है–

साकी शराब पीने दे काबे में बैठकर।
या वह जगह बता दे जहां खुदा नहीं।।

नानक, कबीर, तुलसीदास, मीरा, सूरदास आदि सिद्ध कवियों के जितने भी पद वाणी या आप्त वाक्य हैं सभी में यह भाव समाया है कि परमात्म–सत्ता सर्वत्र ही व्याप्त है–

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम से प्रकट होइ मैं जाना।।

परमात्मा तो सब जगह है ही। चाहिए केवल ऐसा साधक जो इस सत्ता को प्रकट करने का पुरुषार्थ करने का दम रखता हो।

योगिराज जी चन्द्रमोहन जी ऐसे पुरुषार्थियों की सफलता के एकमात्र आधार अपनी करुणा का उन्मुक्त प्रसार किए हैं। इनकी शरण में आकर गोस्वामी तुलसीदास की चौपाई मुखर हो उठती है–

अब मोहिं भामरोस हनुमन्ता।
बिन हरि कृपा मिलें नहीं सन्ता।।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्षयन्ति तेज्ञानंज्ञानस्तत्वदर्शिनः।।

अर्थात् ''उस परमात्म–सत्ता को जानने के लिए जब तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों को प्रणाम, सेवा और प्रश्नों से सन्तुष्ट करेगा तो वे तुझे ज्ञान का उपदेश देंगे।'' तत्वदर्शी ज्ञानी सेवा भी क्या लेगा बहुत सूक्ष्म। और प्रश्न तथा परिप्रश्न केवल अधिकारी ही कर सकता है और अधिकारी को नम्र होकर तत्वदर्शी की शरण में जाना ही चाहिए।

अधिकारी पाठक, आइए और योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी की करुणा प्राप्त कीजिए।

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करेगा कब्ब।।

अनन्त श्री गुरुदेव अपने प्रवचनों, आचरण और सत्संग के द्वारा वातावरण की अलक्ष्य शुद्धि कर रहे हैं, उसमें रहिए। उनसे सीखिए और जन्ममरण जंजाल से निकलकर उस परमात्म–तत्त्व का साक्षात्कार कीजिए जो आज तक केवल मात्र अपने पुरुषार्थ से अप्राप्त रहा है।

श्री सिद्ध गुफा संवाई पर

योग दिवस पर विशेष योगाभ्यास सत्र आयोजित हुआ

योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा संवाई पर विश्वयोग दिवस पर दिनांक 11 से 21 जून 2018 तक विशेष योगाभ्यास व प्रशिक्षण सत्र का आयोजन योगाचार्य श्री वासलाल जी के निर्देशन में किया गया। इस प्रशिक्षण सत्र में बड़ी संख्या में युवाओं और छात्रों ने प्रतिभाग किया।

योगाभ्यास के समापन के अवसर पर योग क्रियाओं के प्रदर्शन बहुत ही सराहनीय रहे। इस अवसर पर उप–जिलाधिकारी एत्मादपुर श्री अभिषेक सिंह, ब्लॉक प्रमुख जगवीर सिंह, सांसद श्री रामशंकर कठेरिया के प्रतिनिधि डा. टीकम सिंह, नायब तहसीलदार डॉ. गजेन्द्र सिंह तथा मीडिया के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया और प्रतिभागियों को प्रमाणपत्र, योग–ड्रेस, कापियाँ–पेन आदि सामग्री देकर प्रोत्साहित किया गया।

सभी वक्ताओं ने योग की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि कार्यक्रम में प्रदर्शित नेति, धोति आदि की क्रियाएँ तथा अनेक कठिन योगासनों का प्रदर्शन सभी के लिए नया अनुभव रहा है। सभी इससे बहुत प्रभावित और प्रसन्न हुए। ये क्रियाएँ अन्यत्र देखने को नहीं मिलती हैं। श्रीसिद्ध गुफा के द्वारा योग विद्या का प्रचार–प्रसार बहुत लम्बे समय से किया जा रहा है।

नेति क्रिया का प्रदर्शन उमाशंकर द्वारा, धोति क्रिया का प्रदर्शन मास्टर घनश्याम गुप्ता द्वारा किया गया। ब्रह्मचारी राजेश द्वारा वृश्चिक आसन आदि किये गए।

मयूर आसन और अनेक आसनों का भी सामूहिक रूप से राहुल, दीपक, प्रदीप, शिवम, हर्षित, लोकेश, यश, हिमांशु, लवकेश, प्रवीन, राघवेन्द्र आदि ने प्रदर्शन किया। योग शिविर में बड़ी संख्या में छात्राओं ने भी भाग लिया। कृष्णा, सोनम, गुंजन, साक्षी, मोनिका आदि ने भाग लिया। बनारस से आये राघवेन्द्र ने स्वागत गीत सहित संगीत की प्रस्तुति में योग पर भजन प्रस्तुत किये। आश्रम वासियों ने उत्साहपूर्वक कार्यक्रम में भाग लिया। प्रतिदिन सभी दर्शकों और प्रतिभागियों के लिए अल्पाहार, फलाहार की व्यवस्था की गयी।

कार्यक्रम का संचालन योगाचार्य श्री वासलाल जी महाराज ने किया।

अथ योगानुशासनम्

अथवा

योग की प्राचीनता और प्रामाणिकता

श्री सुरेन्द्र बहादुर एम. ए. (दर्शन शास्त्र)

'अथ योगानुशासनम्' का शाब्दिक अर्थ होता है—अब योग की शिक्षा देने वाले ग्रंथ का आरम्भ किया जाता है.' इस सूत्र में अनुशासन शब्द ध्यान देने योग्य है। 'अनु' का अर्थ है—'पश्चात्' और 'शासन' का अर्थ है 'उपदेश'। अतः अनुशासन शब्द से यह तात्पर्य निकलता है कि महर्षि पतंजलि जी ने किसी नये योग का उपदेश नहीं किया वरन् उनसे भी पहले योग था जिसको उन्होंने सूत्रबद्ध किया। इस प्रकार अनुशासन शब्द योग की अत्यन्त प्राचीनता का परिचायक है। यह योग महर्षि पतंजलि के बहुत पहले का है जैसा कि हमें विभिन्न ग्रंथों से पता चलता है। योग के आदि वक्ता हिरण्यगर्भ माने गये हैं जैसा कि निम्नलिखित श्लोकों से स्पष्ट हो जाता है—

सांख्यस्य वक्ता कपिलः
परमर्षिः स उच्यते।
हिरण्यगर्भो योगस्य
वक्ता नान्यः पुरातनः।।

अर्थात् सांख्य के वक्ता परमर्षि कपिल कहलाते हैं और योग के वक्ता हिरण्यगर्भ हैं जिनसे पुरातन वक्ता और कोई नहीं है। श्रीमद्भागवत् के पंचम स्कन्ध के 19वें अध्याय में भी इसी बात की पुष्टि की गयी है—

इदं हि योगेश्वर योग निपुणं
हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगादयत्।
यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो
भक्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः।।

अर्थात् हे योगेश्वर ! जिस योग के द्वारा मनुष्य अन्तकाल में देहाभिमान को त्याग करके

आपके निर्गुण शरीर में चित्त को लगाते हैं वह वही योग है जिसे भगवान् हिरण्यगर्भ ने कहा था। अब प्रश्न उठता है कि हिरण्यगर्भ कौन थे? और वे कब उत्पन्न हुए थे? हिरण्यगर्भ के बारे में हमारे शास्त्र बतलाते हैं कि हिरण्यगर्भ मनुष्य नहीं थे वरन् आदि प्रजापति थे। इनका सम्बन्ध महत्तत्त्व से होने के कारण इन्हें शबल ब्रह्म की संज्ञा भी दी गयी है वेदों में कहा गया है–

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य
जातः पतिरेक आसीत्।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

–ऋगवेद १०/१२१/१, यजुर्वेद अ. १३ मंत्र ४

अर्थात् सबसे पहले हिरण्यगर्भ ही उत्पन्न हुये, जो समस्त भूतों के एकमात्र पति हैं। उन्होंने स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वी सबको धारण किया। उन प्रजापति देव का हम हव्य के द्वारा पूजन करते हैं। महाभारत में हिरण्यगर्भ का परिचय इस प्रकार मिलता है–

हिरण्यगर्भो द्युतिमान
य एषच्छन्दसि स्तुतः।
योगैः सम्पूज्यते नित्यं
स च लोके विभुः स्मृतः।।

अर्थात् यह द्युतिमान हिरण्यगर्भ वही हैं जिनकी स्तुति की गयी है और जिनकी योगीगण नित्य पूजा करते हैं और जिन्हें लोक में विभु कहा गया है।

उपर्युक्त वेद–मंत्र द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि सृष्टि रचना क्रम में सर्व प्रथम हिरण्यगर्भ ही उत्पन्न हुये। इस प्रकार हिरण्यगर्भ प्राचीनतम पुरुष हुये। अतः उनके द्वारा कहा गया यह योगशास्त्र भी प्राचीनतम हुआ। याज्ञवल्क्य स्मृति में भी हिरण्यगर्भ को ही सबसे प्राचीन वक्ता माना गया है।

वेद विश्व के प्राचीनतम् ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में भी योग का वर्णन मिलता है। नीचे वेद के कुछ मंत्र उद्धृत किये जाते हैं, जिनसे योग की प्राचीनता प्रमाणित होती है–

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो
विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
विहोत्र दधे वयुनाविदेक
इन्नही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः।। *–यजुर्वेद*

अर्थात् जो ज्ञानी विद्वान हैं वे उस महान् ब्रह्म को जानने के लिए समाधि या योग में प्रवृत्त होते हैं। योग की शक्ति से यज्ञ कर्मों का भी विधान किया जाता है।

वेदों के अनुसार योग की सिद्धि के लिए धी शक्ति अत्यन्त आवश्यक है। धी का सम्बन्ध ध्यान से है। बिना योग के कोई यज्ञ सिद्ध नहीं होता। ऋग्वेद में लिखा है–

यस्माद्यतेन सिध्यंति

यज्ञो विपश्चितश्चन।

स धीनां योगमिन्वति।

–ऋग्वेद मंडल १, सूक्त १८ मंत्र ७

अर्थात्, विद्वानों कार्मा यज्ञ बिना योग के सिद्ध नहीं होता।

स घा नो योग आ भुवत्

स राये स पुरंध्याम्।

गमद् वाजेभिरा स नः।।

–ऋग्वेद १/५३ साम. ३०१/२/१०/३/ अथर्व. २०/६९/१

अर्थात्, ''ईश्वर की कृपा से हमें योग सिद्ध होकर विवेकख्याति तथा ऋतम्भराप्रज्ञा प्राप्त हो और वही ईश्वर अणिमा आदि–सिद्धियों सहित हमारी ओर आवें।''

''योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सवाय इन्द्रमूतये।।''

–ऋ. १/३०/७/ सा. उ. १/२/११/ अथर्व. १९/२४/७

अर्थात्, हम साधक गण प्रत्येक समाधि में परम ऐश्वर्यवान इन्द्र (ईश्वर) का आह्वान करते हैं।

वेद के अंग उपनिषदों में भी योग का निरूपण किया गया है। सभी उपनिषदों में योग की प्रधानता स्वीकार की गई है। उदाहरणार्थ श्वेताश्वतरोपनिषद में ध्यान योग, योग की विभिन्न क्रियाओं तथा उनके फलों का विस्तृत विवेचन किया गया है। समाधि का फल बताते हुए लिखा है–

सवित्रा प्रसवेन

जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम्।

तत्र योनिं कृणवसे

नहि ते पूर्तमक्षिपत्।।

अर्थात् सविता के द्वारा अनुज्ञात होकर उस चिरन्तन ब्रह्म को सेवन करना चाहिए। उस ब्रह्म में तुम समाधिरूप निष्ठा करो। इससे पूर्वकर्म तुम्हारे लिए बन्धन कारक नहीं होगा।

श्वेताश्वतरोपनिषद् के अध्याय दो में ध्यान, प्राणायाम तथा योगजा सिद्धियों का विशद् वर्णन किया गया है। कठोपनिषद् में ध्यान योग की महत्ता दिखलाते हुये यमराज नचिकेता से कहते हैं–

पुरमेकादश द्वारम–
जस्यावक्र चेतसः।
अनुष्ठान न शोचति
विमुक्तश्च विमुच्यते।।
।एतद्वैतत्।।

–कठ. 2 ।1

अर्थात् ग्यारह दरवाजों वाला यह शरीर आत्मा का पुर है। उस आत्मा का ध्यान करने पर मनुष्य शोक नहीं करता और मुक्त हुआ ही मुक्त हो जाता है। वृहदारण्यकोपनिषद् में भी समाधि के द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करना बताया गया है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी उपनिषद् हैं जिनमें केवल योग का ही वर्णन है। ऐसे उपनिषदों की संख्या २१ है।

पुराणों में योग के आठों अंगों का निर्देश मिलता है तथा योग सम्बन्धी अनेक दृष्टान्तों का अथवा घटनाओं का वर्णन मिलता है। श्री मद्भागवत् में यम और नियम के बारह–बारह भेद बतलाये गये हैं; और स्कन्दपुराण में दस–दस भेद। स्कन्ध पुराण में नाड़ी चक्र तथा कुण्डलिनी आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। श्रीमद्भागवत् यद्यपि भक्ति प्रधान ग्रंथ है फिर भी उसमें योग के द्वारा आत्म शुद्धि एवं मोक्ष के अनेक उदाहरण मिलते हैं, जैसे योगाग्नि के द्वारा सती का शरीर त्याग, ध्रुव द्वारा आसन और प्राणायाम से चित्त के मल को दूर करके भगवान् में चित्त को एकाग्र करना, अजामिल के द्वारा योग का आश्रय लेकर परम धाम को प्राप्त करना इत्यादि। इसके अतिरिक्त योग के आठों अंगों–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि का अनेक स्थलों पर वर्णन किया गया है। ध्यान की विधि तथा ध्यानयोग से प्राप्त सिद्धियों का भी विशद विवेचन किया गया है।

महाभारत में योग की महिमा बड़े ऊँचे शब्दों में गायी गयी है। महाभारत की रचना करने के पूर्व व्यास जी ने महाभारत में वर्णित समस्त घटनाओं को ध्यान योग के द्वारा ही देखा था।

पुण्ये हिमवतः पादे
मध्ये गिरि गुहालये।
विशोध्य देहं धर्मात्मा
दर्भ संस्तरमाश्रितः।।

शुचिः सनियमो व्यासः
शान्तात्मा तपसि स्थितः।।
भारतस्येतिहासस्य
धर्मेणान्वीक्ष्य तां गतिम्।।
प्रविश्य योगं ज्ञानेन
सोऽपश्यत् सर्वमन्ततः।

अर्थात् हिमालय की पवित्र तलहटी में पर्वतीय गुफा के भीतर धर्मात्मा व्यास जी स्नानादि से शरीर शुद्ध करके पवित्र हो कुश का आसन बिछाकर बैठे थे। उस समय नियम-पालन पूर्वक शान्त चित्त हो वे तपस्या में संलग्न थे। ध्यान योग में स्थित हो उन्होंने महाभारत इतिहास के स्वरूप को आदि से अन्त तक सब कुछ प्रत्यक्ष की भाँति देखा और इस ग्रन्थ का निर्माण किया।''

महाभारत के शान्ति पर्व में ध्यान-योग तथा योग की सिद्धियों का विशद विवेचन दिया गया है। महाभारत की कुछ घटनायें जैसे, अर्जुन द्वारा योग-साधन में प्रवृत्त होकर दिव्यास्त्रों को प्राप्त करना, भीष्म पितामह का योग-बल से मृत्यु को रोक रखना इत्यादि, योग की महत्ता की परिचायिका हैं।

योग वासिष्ठ तथा विवेक चूड़ामणि जैसे अद्वैत परक ग्रंथों में भी योग का महत्त्व बतलाया गया है। आदि शंकराचार्य ने आत्मउद्धार के लिये योगारूढ़ होने का उपदेश करते हुये विवेक चूड़ामणि में लिखा है—

उद्धरेदात्मनात्मानं
मग्नं संसार वारिधौ।
योगारूढत्त्वमासाद्य
सम्यग्दर्शन निष्ठया।।
—वि. चू.९

''निरन्तर आत्म-दर्शन में मग्न रहता हुआ योगारूढ़ होकर संसार समुद्र में डूबे हुए अपने आत्मा का स्वयं ही उद्धार करें।''

श्रद्धा भक्तिध्यान योगान्मुमुक्षो-
मुक्तेर्हेतून्वक्ति साक्षाच्छ्रुतेर्गीः।
यो वा एतेष्वेव तिष्ठत्य मुष्य
मोक्षोऽविद्याकल्पिता देहबन्धात्।। —विवेक चूड़ामणि ४८

"श्रद्धा, भक्ति, ध्यान और योग को मुमुक्षु की मुक्ति का साक्षात् कारण बतलाया गया है। केवल इन्हीं में स्थित होने से व्यक्ति अविद्या–कल्पित देहबन्धन से मुक्त होता है।" योग की गीतोक्त पद्धति का बड़ा ही सुन्दर वर्णन स्वामी शंकराचार्य ने इसी ग्रन्थ में किया है—

वाचं नियच्छात्मनि तं नियच्छ
बुद्धौ धियं यच्छ च बुद्धि साक्षिणी।
तं चापि पूर्णात्मनि निर्विकल्पे
विलाप्य शान्तिं परमां भजस्व।।

वाणी को मन में, मन को बुद्धि की आत्मा में तथा कूटस्थ (आत्मा) को पूर्ण ब्रह्म में लय करके परम शान्ति का अनुभव करें।

शंकराचार्य का व्यक्तिगत जीवन भी योग विद्या की महिमा का पूर्ण परिचायक है। उनके द्वारा राजा के मृत शरीर में प्रवेश, आकाश गमन तथा योगाग्नि के द्वारा अपनी माता का शव दाह आदि घटनायें उनके योगबल के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

योग वशिष्ठ के निर्वाण प्रकरण के पूर्व भागों के सर्ग ६९ में अष्टांग योगबल का बड़ा ही विशद् विवेचन किया गया है। काक भुशुण्डि द्वारा वर्णित प्राणायाम की विधि तथा उसके द्वारा आत्मा ज्ञान योग की महत्ता प्रकट करता है। लीला का शरीर परिवर्तन लोक–लोकान्तर गमन तथा ध्यान के द्वारा अपने पति के भूत और भावी जीवन का दर्शन योग की विभूतियों का परिचायक है। चूड़ाला का योग के द्वारा आत्मज्ञान तथा आकाश गमन इत्यादि घटनायें योग वासिष्ठ में योग की महिमा को स्वीकार करती है। स्वयं वशिष्ठ जी ने ही अपने योग–बल से अनेक ब्रह्माण्डों का निर्माण किया और इनका विनाश भी किया।

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते
ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति
तमाहुः परमां गतिम्।।
तां योगमिति मन्यन्ते
स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति
योगो हि प्रभवाप्ययौ।।

—कठ. अ. २ व. ३, १०, ११

अर्थात् जिस समय प्रत्याहार द्वारा पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन के सहित स्थिर हो जाती हैं और

बुद्धि भी चेष्टा नहीं करती अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है उस अवस्था को परमगति कहते हैं। उस स्थिति में इन्द्रिय धारण को ही कहते हैं। उस समय पुरुष प्रमादरहित हो जाता है। क्योंकि योग उत्पत्ति और नाश रूप (निरोध के संस्कारों) उत्पत्ति और व्युत्थान के संस्कारों का नाश है।

श्री मद्भगवद्गीता सभी उपनिषदों का सार है इसीलिए इसका पूरा नाम श्री मद्भगवद्गीता उपनिषद् है। इसलिए कहा गया है–

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

अर्थात् सभी उपनिषद् गौ स्वरूप माने गये हैं, श्री कृष्ण भगवान् ग्वाला रूप हैं बुद्धिमान अर्जुन (गौ को पन्हाने वाले हैं) इस गौ के दूध का उपभोग करने वाला बछड़ा (वत्स) है, और दूध जो गौ से प्राप्त किया गया है वही सुमधुर गीतामृत है, तात्पर्य यह है कि, इस समय यह अद्वितीय ग्रन्थ सारे विश्व का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

गीता के छठवें अध्याय में पतञ्जल–योग का सविस्तार वर्णन किया गया है यहाँ पर हम गीता में वर्णित योग का विस्तृत विवेचन करके केवल एक श्लोक उद्धृत करते हैं जिससे यह पता चल जाय कि गीता ने योग को क्या स्थान दिया है–

तपस्विभ्योऽधिको योगी
ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी
तस्माद्योगी भवार्जुन।।

'योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ है और कर्मकाण्ड वालों की अपेक्षा भी श्रेष्ठ है। इसलिए हे अर्जुन! तू योगी हो।' योगियों की तो बात ही दूर रही, गीता के जिज्ञासु को भी कर्मकाण्ड वालों से ऊँचा बतलाया है–

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।

अर्थात्, योग का जिज्ञासु भी कर्म काण्ड की सीमा से आगे है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रायः सभी भारतीय शास्त्र योग की सर्वाधिक प्राचीनता और प्रामाणिकता को मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं। इसीलिए महर्षि पतञ्जलि जी ने योगशास्त्र के प्रथम सूत्र में–'अनुशासन' शब्द लिखा है।

योग साधन क्यों और कैसे?

श्री चन्द्रहास शर्मा, एम. ए., एम. एड. आचार्य

जीव कर्मवश संसार चक्र में घूमता–घूमता जब थक जाता है और दुःखित होकर करुण–क्रन्दन करता है तब सौभाग्य से उसे सद्गुरुदेव प्राप्त हो जाया करते हैं। श्री गुरुदेव परम कृपा कर उसे कर्मकूप से निकाल लेते हैं। वह जघन्य गुणवृत्ति वाला प्राणी सत्य पथ का पथिक बन जाता है। उसके मन में सर्व प्रथम आत्म–भाव भावना का उदय होता है। जिस प्रकार वर्षा ऋतु में अनेक छिपे हुए बीज अंकुरित होकर पृथ्वी को आच्छादित करने लगते हैं उसी प्रकार माया के वशवर्ती मनुष्य में सर्वप्रथम गुरुदेव के उपदेश श्रवण तथा वेदादिशास्त्र श्रवण से रोम हर्ष, अश्रुपात तथा प्रभु का गुणगान सुन कर पुलक हो जाता है। यहीं से समझिये कि उसके शुक्ल कर्म उदित हो गये हैं और वेद में जिसे 'ऋतुं च सत्यं च' मंत्र द्वारा देवयान मार्ग कहा है उस मार्ग का पथिक होने का प्रयत्न करने की योजना बनाता है। इस यात्रा का प्रमाण–पत्र तो गुरुदेव के चरणों का आश्रय लेने से ही मिलता है। क्योंकि–

बिन सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिन सुलभ न सोई।।

इस यात्रा की गाड़ी अभ्यास, वैराग्य, यम नियम, प्राणायामादि सभी अंगों से मिलकर बनती है। जिसमें विरले मनुष्य ही पुण्य पुंजों के उदय होने पर बैठने की इच्छा करते हैं। अधिकांश प्राणी 'इदमद्य मया लब्धम्' अर्थात् यह आज मैंने पा लिया मैंने अमुक को नीचा दिखा दिया मुझे अमुक से बड़ी घृणा है– इत्यादि मनोरथों के रथ में आरूढ़ रहते हैं। फलत: उनके कर्माशय का नाश नहीं हो पाता बल्कि उल्टा कर्माशय बढ़ता ही रहता है। जब अकाउण्ट बढ़ रहा है तो उसका भुगतान करना ही पड़ेगा तभी छुट्टी मिल सकती है।

योग–मार्ग कर्माशय के बीज को दग्ध कर देता है। जिस प्रकार धान का छिलका उतार कर चावल बना लिया गया फिर उसे कहीं भी रखिये। उसके उगने का डर नहीं है। चने को जब तक कच्चा ही रखा गया है उसके उगने की पूरी–पूरी सम्भावना है किन्तु एक बार अग्नि से भून लेने पर उसका कर्माशय क्षीण हो जाता है उसके उगने की बिल्कुल सम्भावना नहीं रहती। गुरुदेव योगाग्नि से कर्मों के बीज को भूनते हैं जिसका परिणाम होता है–

ध्यानमेषां क्लेश वदुक्ताम्

अर्थात् भगवान पतंजलि कैवल्य पाद में कहते हैं कि ध्यान योग आदि से जिस प्रकार चित्त की वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं उसी प्रकार धारणा समाधि आदि अन्य अंगों से अस्मिता, राग, अभिनिभेषादि सभी क्लेश नष्ट हो जाते हैं जिसका फल होता है कि–

''ततः क्लेश कर्म निवृत्तिः।''

अर्थात् अविद्यादि जो क्लेश जन्म–मरण व्याधि आदि दुःखों के हेतु हैं वे भी योगारूढ़ पुरुष के लिये निवृत्त हो जाते हैं। उपनिषद् के 'क्षीयन्ते–चास्य कर्माणि–तस्मिन्दृष्टे परावरे' वाक्य का भी यही अभिप्राय है। जब कारण ही नष्ट हो गया तो कार्य कैसे रह सकता है? कपड़े को जला देने पर उसके तन्तु, रंग, तन्तु–समवाय तथा कलाकृति एवं उसके सभी धर्म यथा नवीन, प्राचीन, फटा–पुराना, अच्छा–बुरा सभी नष्ट हो जाते हैं। वह वस्त्र नाम, रूप, गुणधर्म से रहित वस्तु–रूप हो जाता है। उसी प्रकार कर्माशय के क्षीण होने से ही–

'तदाद्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'

अर्थात् दृष्टा जब अपने चेतन स्वरूप में एक रूप होता है–यह स्थिति प्राप्त होती है। यह मंजिल चन्द्रलोक से भी बड़ी लम्बी है। एक दिन या एक जीवन में ही मिल जाय यह शत प्रतिशत सत्य नहीं है। सद्गुरुदेव की कृपा हो जीव का अपना पुण्योदय हो तथा उसमें यह अनुभूति हो 'मैं कर्मों के बन्धन में हूँ।' 'दुःख से जल रहा हूँ'। 'इससे मुक्त होकर ही रहूँगा। तभी नरतनु का प्रयोजन पूर्ण हो सकता है।' अधिकांश प्राणी तो ऐसे ही हैं जो नरतनु पाइ विषय मन देहिं। जगतगुरु शंकराचार्य ने सांसारी पुरुषों का यथार्थ चित्रण किया है–

बालस्तविद् क्रीडासक्तः,
तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः।
वृद्धस्तावद् चिन्ता मग्नः,
पारे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः।।

अधिकांश लोग सोचते रहते हैं अभी तो यौवन है भोग कर ले। बुढ़ापा आने पर कुछ आत्म–चिन्तन करेंगे पर बुढ़ापा कब रुकने वाला होता है। बुढ़ापा अपने साथ रोग, दुर्बलता, इन्द्रियों की क्षीण शक्ति तथा चिन्ताओं का तोहफा लेकर आता जाता है उस समय कुछ करने की बात सोचना 'प्रदीप्ते भवने कूपखनन प्रत्युद्यमः कीदृशः' अर्थात् आग लगने पर कुआ खोदने में उद्यम करने के समान है। एक महात्मा से एक युवक ने कहा–महाराज आप ये उपदेश बुड्ढे लोगों को दें तो ज्यादा अच्छा रहे। हम लोगों के खेलने खाने के दिन हैं।' महात्मा का उत्तर ध्यान देने योग्य है–

'जिस प्रकार स्त्री को हृष्ट–पुष्ट पुरुष की अपेक्षा है इसी प्रकार योग–साधना, भक्ति

आदि सभी के लिए ऐसे ही पुरुष की आवश्यकता है। जिसका शरीर निराशा और चिन्ता से जर्जरित नहीं है, जिसमें कुछ करने का अदम्य उत्साह है। जो जीवन में अमृतपान करना चाहता है, जिसे अभी बहुत रास्ता तय करना है।'' अस्तु, वैसे शुभ कार्य जब से भी प्रारम्भ हो जाय अच्छा ही है। कुछ भी संस्कार बन गये तो कर्मों के खाते से उतना बे–बाक हो जायेगा तथा अगले जन्म में वहीं से आगे बढ़ने की दिशा मिल जायेगी। कबीरदास जी कहते हैं–

मारग चलते जे गिरे तिनको नाही दोष।
कह कबीर जो ना चलें तिनको करड़े कोस।।

'कर्म एव मनुष्याणं कारणं बन्ध मोक्षयोः'

अर्थात् कर्म ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है। 'अहं' की भावना से जो भी कर्म किये जाते हैं वे सब अविद्या की सन्तान परम्परा को जन्म देते हैं तथा बन्धन के हेतु होते हैं। प्रायः मलिन सत्व प्रधान जीव स्वार्थ के वशीभूत होकर ही कर्म करते हैं। बन्धन हेतुक कर्म पहले देखने में सुख मूलक लगते हैं किन्तु परिणाम में दुःखद होते हैं। बन्धन के हेतु कर्मों का त्याग करना चाहिए तथा मोक्ष हेतुक कर्मों का अभ्यास करना चाहिए। 'अभ्यास वैराग्याभ्याम् तन्निरोधः' में मन के संस्कारों के निरोध के लिए अभ्यास और वैराग्य को इसी उद्देश्य से आवश्यक बतलाया गया है। कर्म से संस्कार बनते हैं और संस्कारों से भाव तथा भाव से ही जगत की रचना होती है। चाहे यह साधु भाव हो या असाधुभाव। भिन्न–भिन्न गुण वृत्ति के अनुसार भाव–कर्म–तथा संस्कारों का निर्माण होता रहता है। कर्मों का रहस्य जानना स्वयं में ईश्वर बुद्धि का उदय है। यदि प्राणी के मन में यह भाव आने लगा–

'कोऽहमासम् कथमहमासम्
किस्विद इदं, कथं स्विदिदं।

अर्थात् मैं कौन था? यह संसार क्या है? यह संसार कैसे बना इत्यादि जिज्ञासा मूलक प्रश्नों के उठने पर ही समझ लेना चाहिए कि मोहनिशा से जीव जग गया है। परन्तु जब तक सद्गुरुदेव की प्राप्ति नहीं हुई तब तक समझना चाहिए कि सूर्योदय नहीं हुआ। यात्रा करने की भावना हुई पर कहाँ जाना है? कैसे जाना है, यह सब बताने वाला चाहिए। मन की यह छटपटाहट यह बेचैनी कितने लोगों में होती है। नचिकेता में थी। उसने यमाचार्य द्वारा दिये गये सभी प्रलोभनों को ठुकरा दिया। विवेकानन्द में थी, जिन्होंने माँ महाकाली से लौकिक अभ्युदय की याचना करते हुए बड़ी लज्जा का अनुभव किया था। जो हीरे दे सकता है उससे मिट्टी माँग कर अपनी मूर्खता प्रकट करते हो। ''शब्द उनके कानों में गूँज गये। पृथ्वी घूम गई। विवेकानन्द भावातुर हो चिल्लाने लगे ''मोक्षं देहि कृपां देहि।'' भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता

में कहा भी है कि यह छटपटाहट हर प्राणी में नहीं होती। अधिकांश प्राणी पद, सत्ता, धन–कुटुम्ब आदि की आपाधापी में ही हीरे के समान कीमती जीवन को मिट्टी के मोल बेच देते हैं–

'मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः।

अर्थात् हजारों मनुष्यों में से बिरला ही संसार अग्नि से जलता हुआ अनुभव करता है तथा उससे मुक्त होने का यत्न करता है। यत्न करने वाले हजारों पुरुषों में से कोई–कोई परम प्रभु का साक्षात्कार कर पाता है। मार्ग में अनेक खाई खंदक और अन्धकार है। उसे पाकर आगे बढ़ना हर एक के वश का काम नहीं। जिसमें 'सर फरोशी की तमन्ना है, तथा संत कबीर के शब्दों में 'जो घर फूंके आपना चले हमारे साथ' कर सकता है वही योग मार्ग में प्रवृत्त हो सकता है। यहाँ मोक्ष हेतुक कर्मों का निर्देश करना अप्रासंगिक नहीं होगा, प्रायः साधकों के समक्ष आचार और व्यवहार सभी अनेक प्रश्न आते हैं जिन की उलझन में पड़कर वे साधना करना छोड़ देते हैं वस्तुतः कर्म का विषय बड़ा गहन है–

किं कर्म किम् कर्मेति
कवयोऽप्यत्र मोहिताः।

गीता में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को समझाया है कि हे अर्जुन कर्म मनुष्य को संसार चक्र में डालते हैं इसलिए कर्म करो पर निष्काम होकर। वैसे क्या करना चाहिए? क्या नहीं करना चाहिए? इन प्रश्नों का उत्तर बड़े–बड़े मनीषी भी नहीं दे सकते। अतः भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को दो चार गुरुमंत्र बताये–

१. पूर्वकाल में मुमुक्षुओं ने जिस प्रकार के कर्म किये थे वैसे ही तुम कर्म करो

२. निर्लिप्त होकर कर्म कर। उनमें अपने मन को भी आसक्ति का त्याग कर अर्थात् कर्म फल की चाह न कर तभी नवीन कर्माशय नहीं बनेगा। वर्तमान निष्काम कर्मों से संचित एवं प्रारब्ध कर्म क्षीयमाण हो जायेंगे। परम हंस रामकृष्ण कह दिया करते थे–जैसे कीचड़ में पाताल मछली रहती है परन्तु उसके शरीर पर कीचड़ नहीं लगती उसी प्रकार कर्म करो परन्तु उनमें लिप्त न हो।

३. कर्म में अकर्म देखो तथा अकर्म में कर्म देखो।

''कर्मण्यकर्म यः पश्येद–कर्मणि च कर्म यः।
सः बुद्धिमान्मनुष्येषु, सयुक्तः कृत्स्न कर्म कृत्।।''

अर्थात् कर्त्ता होकर फल की भी इच्छा से रहित बनो और अकर्त्ता भाव रखो तथा अकर्त्ता

भाव रखने का यह अर्थ नहीं सोचने लगो।

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।

दास मलूका कह गये सबके दाता राम।।

कर्म किये बिना रह नहीं सकते। शरीर एवं इन्द्रियों से कदाचित कर्म करना बन्द भी करदे तो मनुआं तो चहुँ दिश फिरता ही रहेगा और चित्त में परिणाम संस्कारों को निर्माण करता ही रहेगा। फिर कैसे मुक्त हो सकते हो। वेद की भी आज्ञा है–

'कुर्वन्नेवेह कर्माणिजिजी विशेत् शतं समाः

अर्थात् कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करो। इससे अच्छा कोई मार्ग नहीं है।

इस प्रकार करने से मनुष्य कर्म में लिप्त नहीं होता और न निष्क्रिय ही बनता है। कर्त्ता में अकर्त्ता भाव तथा अकर्त्ता में कर्त्ता भाव यही भाव है।

४. शरीर को धारण करने के लिए भरण–पोषण–उपाय तो अवश्य करने पड़ेंगे ही। न करने पर पराश्रयी रहना शोषण होगा। पर शरीर को धारण करने के लिए कितना अन्न चाहिए। तुमने हजारों मन इकट्ठा कर रखा है उसको कैसे ऊँचे दामों में बेचें यही चिन्ता रात दिन। कर्माशय बढ़ रहा है। रहने के लिए कितनी जगह चाहिए? सौ वर्ग गज एक हजार वर्ग गज फिर सर्वत्र तुम्हारी ही कोठियाँ हों यह इच्छा क्यों? छूटेंगे कैसे? कर्माशय बढ़ रहा है। शरीर को शीतोष्ण से बचाने के लिए वस्त्र चाहिए । कितने जोड़ी में सन्तुष्ट हो जाओगे? नयी फैशन नयी डिजाइन इसके लिए पैसा कहाँ से लाओगे? चोरी, रिश्वत, बेईमानी से कर्माशय बढ़ रहा है।

भगवान श्रीकृष्ण ने इसलिए बताया–

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्त सर्व परिग्रहः।

शारीरं केवल कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्।।

अर्थात् मन को निग्रह करके परिग्रह त्याग कर आशा का निराकरण कर दो। शरीर को ही आत्मा समझ कर यदि उसके लिए ही कर्म करते रहोगे तो पाप होगा।

योग के द्वारा ही कर्मों से छुटकारा मिल सकता है। योग युक्त पुरुष के कर्म ही मोक्ष हेतुक कर्म होते हैं। लोहा ही लोहे को काटता है, इसी प्रकार कर्मों से ही कर्मों का नाश होता है। आत्म भाव में स्थित हुए योगी को कर्म बाँध नहीं पाते। वह कर्म करता हुआ भी अकर्त्ता होता है क्योंकि उसके अस्मिता वृत्ति (मैं करता हूँ) ध्यान योग के द्वारा दग्ध हो जाती है और उसके अन्दर यह भाव सहज ही आ जाता है–

मेरा मुझ में कुछ नहीं सब कुछ है प्रभु तोर।

तेरा तुझको सौंपते क्या लागेगा मोर।।

गीता में भगवान कृष्ण चन्द कहते हैं–

योग संन्यस्त कर्माणंज्ञान संछिन्न संशयम्।

आत्मवन्तं न कर्माणि निबन्धन्ति धनंजय।।

तस्मादज्ञान सम्भूतं हृत्स्थं ज्ञान सिंनात्मनः।

छित्वैनं संशयः योगमानिष्ठोत्तिष्ठ भारत।।

अर्थात् हे अर्जुन जो योगाभ्यास द्वारा कर्मों का त्याग कर देते हैं तथा ज्ञान द्वारा संशयों का छेदन कर देते हैं। ऐसे आत्म भाव में स्थित योगियों को कर्म जन्ममरण के बन्धन में नहीं बाँधते। अतः अविद्या जन्य हृदय में उठे हुए संशय को ज्ञान की तलवार द्वारा काट कर योग में आरूढ़ होने के लिए उठ खड़ा हो।

कर्माशय के नाशोपाय

यम–नियम प्राणायाम प्रत्याहार–धारणा ध्यान–समाधि के द्वारा क्लेश कर्मों का नाश होता है तथा विशुद्ध सत्व प्रधान ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय होता है जिसमें अविद्या माया तथा जनित समस्त प्रकार के संशय विपर्य मिथ्यादि ज्ञान से रहित केवल मात्र सत्य का ही प्रकाश होता है। इस स्थिति तक पहुँचने के लिए प्रारम्भिक कक्षा की जमकर पढ़ाई करने की आवश्यकता है। सिद्ध योगी तो बिना सिड़्ढियों के ही परम पद पर उतर चढ़ सकते हैं तथा दूसरे को भी वह मार्ग दिखा सकते हैं। यह इसी प्रकार है जैसे पार्लियामेण्ट देखने के लिए किसी मिनिस्टर के साथ आप बे रोक–टोक जा सकते हैं पर वहाँ स्थायी बैठने के लिए आपको मिनिस्टर होने की सभी प्रक्रियाओं से होकर गुजरना होगा। अतः साधक को यम–नियमों का अभ्यास करना चाहिए तभी उसका लौकिक आचरण अन्य पुरुषों से भिन्न होगा तथा अनुसरण होने के अनुरूप होगा।

अहिंसा–सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह ये पाँच जाति देश काल समय से अनवच्छिन्न सार्वभौम महाव्रत हैं। इनका पालन अखिल भूलोक के प्रत्येक प्राणी के लिए आवश्यक है।

शौच–सन्तोष तपः स्वाध्येश्वरप्रणिधानानि– नियमाः।

अर्थ स्पष्ट है। पाँच नियम हैं जो मानसिक प्रसन्नता के लिए आवश्यक है। जब तक मन में सत्व गुण का उद्रेक नहीं होता तब तक मन मे धारणा करने की योग्यता नहीं आ सकती। गीता में भगवान ने कहा है। 'प्रसन्न चेतसो ह्यासु बुद्धिपर्यवतिष्ठति' चित्त की प्रसन्नता तभी

हो सकती है जब चित्त के मल को धो दिया जाए। शौच सन्तोष आदि के द्वारा मन की मैली चादर को धोकर स्वच्छ किया जाता है जिससे इसे श्याम रंग में रंग सके। साधना अवस्था में प्रायः विश्वास डगमगाने लगता है तथा श्रद्धा भी साथ छोड़कर जाने लगती है। 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि 'अर्थात् कल्याण मार्ग में बहुत से विघ्न उपस्थित होते हैं। परिवार में लोग अनर्गल बातें प्रचारित करना प्रारम्भ कर देते हैं। स्वयं अपने प्रारब्ध के संस्कार ही शुद्ध कपड़े को गन्दा करना चाहते हैं। विषय–भोगों की लालसा प्रबल होने लगती है। उठी हुई शक्ति का प्रदर्शन अथवा दूसरे का अनिष्ट करने की इच्छा होती है। कंचन और कामिनी में आसक्ति होने लगती है। ऐसी अवस्था में साधक को क्या करना चाहिए। भगवान पतञ्जलि ने योग–दर्शन में स्पष्ट कहा है कि–

वितर्क बाधने प्रतिपक्षभाव नम्।

अर्थात् अहिंसा आदि का अभ्यास करने के बाद भी कभी–कभी क्रोध, लोभ या मोहवश हिंसा अब्रह्मचर्य आदि में प्रवृत्ति हो जाती है और जो कुछ परिश्रम किया था कर्माशय तथा कर्म बीज को क्षीण करने के लिए वह फिर अंकुरित होने लगता है। ऐसी दशा में विलोम भावना करने से मंजिल से नीचे पतन नहीं हो पाता। जिन विषयों को छोड़ दिया। मन से शत्रुता की भावना निकाल दी। नारी में मातृभाव का अभ्यास कर लिया। यदि अज्ञान के समूल नष्ट न होने के कारण चित्त में विक्षेप हो। तथा स्वयं किसी को मारकर दूसरे को मारने की प्रेरणा आदि इच्छा हो ऐसे समय में उसे विचार करना चाहिए।

घोरेष ससारांग रेषु पच्य मानेन मया शरणमुपागतः सर्व भूताभय प्रदानेन योगधर्मः स खल्वहं त्यक्तवा वितर्कान पुनस्तानाददान स्तुल्य श्ववृत्तेन इति भावयेत यथा श्वाः वान्ता बले ही तथा त्यक्तस्य पुनराददान इति।

अर्थात् घोर संसार के दुःख में व्याकुल मैंने समस्त प्राणियों को अभय देने वाले योगधर्म की शरण ली है, उसके अभयदान धर्म को छोड़कर फिर मैं वासनामय वध–भोग आदि पापकर्म में प्रवृत्त होना चाहता हूँ। जो–जो वितर्क (अविश्वास) मन में उपस्थित हो उसके प्रतिरूप ही दूसरी भावना का ध्यान करना चाहिए और विचार करना चाहिए कि जैसे कुत्ता वमन करने के बाद ही फिर उसी का भक्षण करता है उसी तरह मेरा आचारण कुत्ते की भाँति हो जायेगा। मनुष्य होकर कुत्ते का जैसा आचरण करना क्या मुझे उचित है। इस प्रकार के अभ्यास से साधक योगारूढ़ होकर मार्ग की बाधाओं को पार करता हुआ परम पद का पथिक बन जाता है।

आश्रम समाचार–

योग सिद्धाश्रम मंडी (हि. प्र.) में विशाल योग शिविर

हेमराज मंडी (हि. प्र.)

अखंड कोटि ब्रह्माण्ड नायक आनन्दकन्द महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं सद्गुरुदेव योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज की असीम अनुकम्पा से प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी योग सिद्धाश्रम मंडी में 26 से 30 मई 2018 तक पांच दिवसीय विशाल योग शिविर योगाचार्य डॉ. दासलाल जी के सान्निध्य में धूमधाम से उल्लासपूर्वक मनाया गया। योग शिविर पिछले कई वर्षों से यहां लगाया जाता रहा है किन्तु इस बार की विशेषता यह रही कि सैंकड़ों की संख्या में स्थानीय वासियों के अलावा सुदूर वाराणसी–इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश), दिल्ली, हरियाणा, चण्डीगढ़, देहरादून, मध्यप्रदेश, राजस्थान आदि क्षेत्रों से आए गुरु भक्तों ने अत्यन्त उत्साह से इस शिविर में भाग लिया। जिसके परिणामस्वरूप यह कार्यक्रम अति सुन्दर, रोचक एवं दिव्य बन गया।

निर्धारित कार्यक्रमानुसार प्रात: पाँच बजे आरती, ध्यानाभ्यास का समय रहता था। आचार्य जी स्वयं अपनी उपस्थिति में सैंकड़ों लोगों को ध्यान में बैठाते थे। यूँ तो प्रभु दरबार काफी बड़ा है किन्तु साधकों की संख्या इतनी अधिक थी कि कहीं तिल धरने की भी जगह नहीं रहती थी। पार्श्व में कल–कल करती ब्यास नदी की मर्मर ध्वनि के कारण मन स्वत: ही ध्यान की ओर प्रवृत्त हो जाता। यह ध्यान कक्षा 6:30 प्रात: तक रहती। तत्पश्चात् एक घंटे तक आचार्य जी जीवन तत्त्व साधन व अन्य यौगिक आसन करवाते जो 7:30 तक चलते। तत्पश्चात् आधा घंटा अर्थात् 7:30 से 8 बजे तक का समय प्राणायाम आदि का रहता। अम्बाला से पधारे ब्रह्मचारी डॉ. वीरेन्द्र स्वरूप इसका संचालन करवाते। वे अत्यन्त मनोयोग से कपाल भाति, अनुलोम विलोम, इत्यादि प्राणायाम की विभिन्न क्रियाओं की उपयोगिता समझाते हुए इनका अभ्यास करवाते जो प्रात: 8 बजे तक रहता।

प्रात: 9:30 से 11 बजे का समय गीता पाठ एवं इस पर प्रवचन का रहता। आचार्य जी गीता पाठ करते एवं सभी साधकों से भी करवाते। साथ–साथ प्रत्येक श्लोक का अर्थ एवं इसकी विस्तृत व्याख्या भी करते। यह सब इतनी सरल भाषा एवं शब्दों में समझाते कि

अज्ञानी से अज्ञानी व्यक्ति भी इनका अर्थ एवं उसमें छिपे हुए गूढ़ रहस्यों को आसानी से समझ जाता था।

सायंकाल 3 से 6:30 का समय भजन–संकीर्तन का रहता। स्थानीय गायकों के अतिरिक्त बनारस, हरियाणा, इलाहाबाद की भजन मंडलियों ने सुन्दर भावपूर्ण भजनों द्वारा प्रभुजी को रिझाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। एक से एक सुन्दर भजन बरबस हृदय को आह्लादित कर देते। इस संकीर्तन एवं आरती के समय कई साधकों को ध्यानस्थ होते देखा गया। इसके उपरान्त आचार्य जी के श्री मद्‌भगवत् गीता एवं योग पर सारगर्भित प्रवचन होते।

प्रथम दिवस गीता के 18वें अध्याय से प्रारम्भ हुआ। आचार्य जी ने बतलाया कि गृहस्थ में रहते हुए गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए भी फल और आसक्ति को त्यागकर भगवदर्पण बुद्धि से संसार से उपराम होकर श्रीहरि का ध्यान करते हुए समस्त कर्मों को करते हुए भी मनुष्य परम पद प्राप्त कर लेता है। अपने प्रवचनों में आचार्य जी ने स्पष्टता से बताया कि हमारे अन्तःकरण में जो आत्मा है वह पुरुष कहा गया है। वह परम निर्मल, शुद्ध विकार रहित परमात्मस्वरूप है। उसे न अग्नि जला सकती है, न वायु सुखा सकती है। वह अमर है। उसका किसी काल में नाश नहीं होता। जिसे आत्मज्ञान है, वही पुरुष है। अब यह जो पुरुष है वह बुद्धि के संयोग से अपने को सुखी या दुखी मानता है। अपनी बुद्धि से अज्ञान को अपने अन्दर पाल रखा है। इससे छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय "योग" है। योग द्वारा ही हम इस बुद्धि–जनित अज्ञान से छुटकारा पा सकते हैं। भगवान श्रीकृष्ण गीता के छठे अध्याय में कहते हैं कि यह आत्मा आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है–

"उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानम अवसादयेत
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः"

महर्षि पतंजलि द्वारा अष्टांग योग के वर्णित आठ अंगों यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का अवलम्ब लेकर साधना करने वाला विशेषकर अंतिम तीन अंगों धारणा, ध्यान, समाधि का आश्रय लेकर योग पथ पर आरूढ़ व्यक्ति अपने लक्ष्य को सुगमता से प्राप्त कर लेता है पर इसके लिए निरंतरता व नियमानुवर्तता का पालन करना पड़ता है। आचार्य जी ने बताया कि जिन साधकों को समाधि लाभ प्राप्त हो जाता है उनके पाप–कर्मों के पहाड़ ही क्यों न हों, शनैः–शनैः वे समाप्त हो जाते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि सद्‌गुरु द्वारा प्रदत्त गुरु मंत्र का प्रातः 2 घण्टे जाप व एक घंटा ध्यान नियम पूर्वक, बिना थके किया जाए। अंतिम दिन 30 मई 2018 को आचार्य जी ने–

''सर्वे भवन्ति सुखिना, सर्वे सन्तु निरामया,
सर्वे भद्राणि पश्यन्ति, मा कश्चित दुख भाग भवेत।''

द्वारा प्राणी मात्र की सुख, समृद्धि एवं आरोग्यता की कामना के साथ अपने प्रवचन को विश्राम दिया।

इस योग शिविर में सैकड़ों गुरुभक्त विभिन्न स्थानों से आकर सम्मिलित हुए जिनमें मुख्यत: वाराणसी से श्री संजय सिंह 'मुन्ना', राकेश सिंह, मिन्टू, घरौंडा (हरियाणा) से मंडल प्रधान श्री जसवन्त सिंह, कर्मवीर सिंह, पाले राम, कुराना से राजवीर सिंह 'राजा', देहरादून से परम गुरु भक्त श्री सत्य प्रसाद शास्त्री, अलुपुर से बाबा मेहर चन्द, सवाई धाम से टी. एस. फक्कड़ बाबा एस. पी. शास्त्री, रहे जिन्होंने अन्य गुरु भक्तों सहित आकर इस कार्यक्रम को भव्यता एवं अपने भजनों एवं संस्मरणों द्वारा दिव्यता प्रदान की।

इसी दिन अपराह्न में विशाल भण्डारे का आयोजन था जिसमें सैकड़ों की संख्या में व्यक्तियों ने श्री प्रभुजी का प्रसाद ग्रहण किया। इस शिविर का आयोजन योग सिद्धाश्रम मण्डी के सभी सदस्यों ने मिल–जुल कर किया एवं इसकी व्यवस्था की। बाद दोपहर 3 बजे श्री आचार्य जी को नम आँखों से भाव भीनी विदाई के साथ ही इस पंच दिवसीय योग शिविर का समापन हुआ।

आवश्यकता है?

(समर्थ स्वामी रामदास)

किसकी? सुधारकों की–दूसरों को सुधारने वालों की नहीं, किन्तु अपने–आपको सुधारने वालों की।

योग्यता? विश्वविद्यालय के उपाधिधारी सज्जनों की नहीं, किन्तु परिच्छिन्न भाव से विजेताओं की।

आयु? दिव्यानन्द भरा तारुण्य।

वेतन? ईश्वरत्व।

शीघ्र निवेदन करिए

किससे? विश्वनियन्ता से अर्थात् अपनी ही आत्मा से।

कैसे? दासो अहं दीनता से नहीं, किन्तु निश्चयात्मक निर्णय और अधिकार के साथ।

"पूर्ण योग"

डा. जे. पी. शर्मा, कृषि निदेशक (से. नि.), पौण्टासाहिब हि.प्र.।

साधारणत: योग का मतलब मिलन, संयोग, मेल, जोड़ आदि है। योग कभी अकेले का नहीं हो सकता। योग के लिये दो या दो से अधिक का एक हो जाना होता है। योग सदैव ही वियोग में होता है। यह सांसारिक जीवन योग–वियोग ही है। हर जीव, ईश्वर का ही अंश कहा गया है। ईश्वर अंश जीव अविनाशी–अर्थात् हमारी आत्मा जिसका कभी विनाश नही होता, परमात्मा का ही तो अंश है। इसलिये जन्म–मरण में योग और वियोग होता रहता है। भाव है कि ईश्वरी–जीवन में पूर्णयोग भी है और पूर्ण वियोग भी। जीवन में आना–जाना अथवा कोई परिवर्तन नहीं है। सभी रूप और जीवन की सभी अवस्थाओं में योग है।

यह भी निश्चित है कि ईश्वर की सत्ता के अतिरिक्त संसार में कुछ नही है अर्थात् अन्य कोई सत्ता नही है। जिसमें यह धारणा और ज्ञान है कि जो कुछ दिखाई दे रहा है, एक ईश्वर में ही योग पा रहा है। वह तो अपने जीवन की सभी समस्याओं सहित प्रभू में समाया रहता है। उसका संसारी जीवन भी ईश्वरीय जीवन है। जैसे नदी अपने समुद्र में पूर्णयोग प्राप्त कर अपने रूप और मन को समुद्र में मिला देती है। समुद्र में योग पाकर नदी अपना रूप और नाम समुद्री सत्ता में समाहित हो जाती है तथा समुद्र बन जाती है तथा नदी का अस्तित्व नहीं रहता।

आवश्यकता है कि नदी के पूर्णयोग पर विचार किया जाये। नदी जिस पर्वत से निकली है, उसका जो जन्म स्थान है, वहीं से वह अपने समुद्र में योग प्राप्त कर रही है, यही नदी का पूर्ण योग है। हाँ अगर नदी का कोई भाग अविरल नही है तो इस अवस्था में उसका पूर्ण योग नहीं कहा जायेगा।

इसी तरह योग साधक भी अपने पूर्णरूप में तथा सभी अवस्थाओं में अपने प्रभु में पूर्णयोग पा रहा है। इसमें स्थूल या सूक्ष्म का भेद नहीं है। संसारी दृष्टि अपने सामने जो कुछ है उसे देख रही है, वैसे ही इसमें ईश्वरीय सत्ता का देखना है। इसमें अपना देखना सब में समाया है और ऐसी दृष्टि–द्वारा पूर्ण योग ही है। ऐसी स्थूल दृष्टि में सूक्ष्म दृष्टि भी समायी हुई है। पूर्ण आनन्द, पूर्ण उल्लास, पूर्ण उमंग सब पूर्ण ही पूर्ण है।

पूर्ण योग का अभिप्राय है कि मानो सभी रूपों, सभी नामों तथा सभी अवस्थाओं में अपने

प्रभुजी अपना योग ही योग दे रहे हैं। किसी भी रूप नाम या अवस्था में किंचितमात्र भी कुछ ग्लानि या शंका मन में आ जाये तो समझें कि यही योग से हीनता है। परन्तु यह ग्लानि, शंका या नहीं का व्यवहार भी अपने प्रभुजी का ही पूर्ण दान है। यह भी पूर्णयोग की पूर्ति और दृढ़तारूप ही है।

हिरण्यकशिपु–श्री प्रह्लाद की भक्ति में अवरोध करने पर भी अवरोधक नहीं थे, अपितु उनकी गहरी दृढ़ता का कारण भी प्रभु की प्रेरणा ही है। यह भी संसारी वियोग की अवस्था से पूर्ण–योग रिद्धि–सिद्धि में पहुँचने का एक पूर्ण साधन ही है। अपनी प्यारी वस्तु को छीनने वाला ही उस वस्तु में आकर्षण बढ़ाने वाला है।

कृष्ण समीपी पांडवा गले हिमाचल जाय।
कृष्ण बिरहिनी गोपियाँ मुक्तिधाम लिया पाय।।

पाण्डवों का योग बाहरी था तथा गोपियों का योग बाहर से भीतरी योग में समाकर पूर्ण योग सिद्ध हो गया था। इसी तरह हम सभी पूर्णयोग में समाये हैं।

हमारा शरीर पांच तत्वों के मेल से बना है। हवा, पानी, आग, आकाश तथा मिट्टी के अंशों से बना है जिसमें आत्मा रहती है। हमारा अहंकार तथा अभिमान हमें प्रभु से नहीं जुड़ने देता इसे हम माया कहकर बोलते हैं। अहंकार तथा घमण्ड के नशे में जीव अपने को परमात्मा से अलग मानता है जबकि हम हर समय परमात्मा से ही जुड़े होते हैं। यही है पूर्णयोग। इस परमात्मा रूपी ब्रह्म नदी में हमें जीवनभर बहते रहना है। एक क्षण के बुलबुला रूपी जन्म लेकर कुल काल के लिये ब्रह्म नदी से अलग जान पड़ते हैं, परन्तु बुलबुला फूटने अथवा मृत्यु होने पर पुनः ब्रह्म नदी की धारा (जीवन) में जुड़ जाते हैं। अब सोचिये हम उस ब्रह्म नदी अथवा परमात्मा से अलग कैसे हैं। इस प्रकार जीव अपने जीवन पर्यन्त उस परमात्मा से योग बनाये रखता है परन्तु देखने में सब कुछ अलग–अलग लगता है। इसी तत्त्व का नाम है "पूर्णयोग"।

सद्गुरु सत्ता को कोटि–कोटि नमन।

जितना ही अधिक मनुष्य अपने अन्तर में मिलने लगता है और अन्तःकरण से सरल और पवित्र हो जाता है, उतनी ही अधिक ऊँची चीजें वह बिना परिश्रम के समझने लगता है, क्योंकि उसे परमात्मा ही अन्तः प्रकाश प्रदान करते हैं।

अमृतकण

यदा यमवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥

—श्वेताश्वतरोपनिषद् (20)

जब मनुष्यगण आकाश को चमड़े की भाँति लपेट सकेंगे तब उन परमदेव परमात्मा को बिना जाने भी दुःख समुदाय का अन्त हो जायेगा।

• • •

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

—मुण्डकोपनिषद 2/4

यहाँ ओंकार ही धनुष है, आत्मा ही बाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसका लक्ष्य कहा जाता है। वह प्रमादरहित मनुष्य द्वारा ही बींधा जाने योग्य है। अतः उसे बेधकर बाण की तरह उस लक्ष्य में तन्मय हो जाना चाहिए।

• • •

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति।

शास्त्र और आचार्य के द्वारा सुसंस्कृत मन से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस ब्रह्म में अणुमात्र भी भेद नहीं है। जो ब्रह्म में भेद या नानापन देखता है, वह बार-बार मृत्यु को प्राप्त होता है।

• • •

घटावभासको भानुर्घटनाशे न नश्यति।
देहावभासकः साक्षी देहनाशे न नश्यति॥

(आत्मप्रबोध)

जैसे घड़े का प्रकाशक सूर्य घड़े के नाश हो जाने पर नष्ट नहीं होता, वैसे ही देह का प्रकाशक साक्षी (आत्मा) देह के नाश से नाश को प्राप्त नहीं होता।

• • •

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/18-20 JULY 2018

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग
योग विज्ञान का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________
____
____

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत् स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम्।।
(श्रीमद्भागवत 5/5/18)

जो अपने प्रिय सम्बन्धी को भगवद् भक्ति का सदुपदेश देकर मृत्यु की फाँसी से उसे नहीं छुड़ा देता, वह गुरु गुरु नहीं है, स्वजन स्वजन नहीं है, माता माता नहीं है, इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है।